हिन्दी

शीराज़ा

34165

1/2010

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़
जम्मू

3465

द्विमासिक

शीराज़ा

हिन्दी

दिसम्बर 09 – जनवरी 2010

प्रमुख संपादक

ज़फ़र इक़बाल मन्हास

संपादक

नीरू शर्मा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 December 09 - January 2010
(Hindi)

वर्ष : 45 अंक : 5 पूर्णांक : 194

★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब-144 004
दूरभाष : (0181)-2640025

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

सर्जनात्मक साहित्य मनुष्य के अत्यन्त संवेदनशील, सर्जनात्मक और अपरिहार्य अभिव्यक्ति के क्षणों का प्रतिफलन होता है। इसका उत्स इतना गहरा होता है, जहाँ स्रष्टा का संपूर्ण व्यक्तित्व अपनी समूची क्रियाशीलता का निचोड़ संचित करता है। इस उत्स से फूटा हुआ प्रकाश भी उतनी ही गहराई तक प्रवष्टि होने की क्षमता रखता है।

साहित्य का सरोकार मनुष्य की संस्कारिता का निर्माण करना या उसका परिमार्जन करना होता है। वह मनुष्य के संवेगात्मक व्यक्तित्व को स्पर्श करता है। संवेदना को स्पर्श करने का कार्य साहित्य ही कर सकता है और यही अपने समय को बदलने की प्रणाली भी अपनाता है। यह प्रणाली सूक्ष्म एवं अप्रत्यक्ष होने के कारण स्थायी प्रभाव अंकित करती है। इसमें स्थूल समस्याओं को न लेकर मनुष्य को विचार और भाव के रूप में स्पर्श किया जाता है। साहित्य नश्वर जीवन से उठता हुआ एक शाश्वत स्वर है। उस स्वर की गूंज समकालीनता के आगे जाती है एवं निरंतर बहती है।

किसी-किसी साहित्यिक रचना के ऐसे बहुत से पक्ष होते हैं, जिन्हे समकालीन समझ व्याख्यायित करने में सफल नहीं हो पाती। बड़े अंतराल के बाद ही वे रचनाएं पकड़ में आतीं हैं। ऐसी रचनाओं के रचनाकार अपने अनुभवों का प्रक्षेपण यूं करते हैं कि वे अपने समय से बहुत आगे चले जाते हैं। ऐसा साहित्य भविष्य की भूमिका भी तैयार करता है और आने वाले समय के लिए समझ का सार्थक वाहक भी होता है।

नीरू शर्मा

इस अंक में

- ❑ अंतरंग
  - ○ आयुष्मान् भव/*डा. कृष्णचन्द्र गुप्त* / 1
- ❑ साक्षात्कार
  - ○ आज की कहानियां बाजारवाद की शिकार हो रही हैं : डा. नमिता सिंह/*राजेन्द्र परदेसी* / 6
- ❑ गीत/कविता/ग़ज़ल
  - ○ गीतिका/*रमेश चन्द्र शर्मा 'चन्द्र'* / 5
  - ○ ग़ज़ल/*चांद शेरी* / 13
  - ○ पर्वतों-सा दुःख/*हरिशंकर सक्सेना* / 14
  - ○ नासूर/*ज्योतीश्वर पथिक* / 15
  - ○ बेटियां/*पृथ्वीनाथ 'मधुप'* / 16
  - ○ गंगा गंगा है/*डा. निर्मल विनोद* / 19
  - ○ अस्मिता की पहचान/*प्रेम विज्ञ* / 20
  - ○ इंतज़ार करता घर/*लालित्य ललित* / 21
  - ○ रंगारी/*रोहिणी गंधर्व सिंह* / 23
  - ○ उन्होंने भी मनाई दीवाली/*अमृत लाल मदान* / 25
  - ○ मेरे शहर के परिंदे/*कृष्ण कुमार शर्मा* / 26
  - ○ मन/*वरुण सुथरा* / 27
  - ○ शब्दों का व्यापार/*कृष्णा कुमारी* / 28
  - ○ सावन/*कुलदीप कुमार किप्पी* / 30
  - ○ आरोपित/*वीणा सिद्धेश* / 32
- ❑ लघुकथा
  - ○ ताली योग/*जसबीर चावला* / 31
  - ○ खून का रिश्ता/दूरी/*राधेश्याम 'भारतीय'* / 33
  - ○ सपना/*सुनीता भड़वाल* / 34
- ❑ संस्मरण
  - ○ डोगरी के भीष्म पितामह शास्त्री जी से मेरी भेंट/*अवतार कृष्ण राज़दान* / 36
- ❑ ललित निबंध
  - ○ चटनी के बहाने/*योगिता यादव* / 45
- ❑ कहानी
  - ○ आंच/*महाराज कृष्ण संतोषी* / 46
  - ○ उस रात की सुबह/*सुषमा जगमोहन* / 50
  - ○ लावा/*संतोष श्रीवास्तव* / 58
  - ○ संशय के चक्रव्यूह/*डॉ. क्षमा चतुर्वेदी* / 65
  - ○ अदृश्य सखा/*मंगला रामचंद्रन* / 72
  - ○ मेरी अपनी/*कुहेली भट्टाचार्य* / 76
  - ○ आखिरी ख़त/*एम. एस. कालरा* / 79
- ❑ अनुवाद (कश्मीरी कहानी)
  - ○ अन्धेरी रात के घने जंगल में/*मूल० : प्रो. मजरू रशीद*
    अनु० : रूबी मनोज / 82
- ❑ नवांकुर
  - ○ मैं मोती कब बनूंगा/*मंजु बाला* / 84
- ❑ आलेख
  - ○ समकालीन हिन्दी कविता में नारी/*डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय* / 86
  - ○ काश्मीर शैवदर्शन और शिवसूत्र/*डॉ. रमा शर्मा* / 93
  - ○ विद्रोह की रंगमंचीय बुनावट/*नीरू वर्मा* / 100
  - ○ हिन्दी गज़ल और दुष्यंत कुमार/*डॉ. मज़हर अहमद खान* / 108
- ❑ समीक्षा
  - ○ शहर-ए-गज़ल : सारे रंग उसी के हैं/*डॉ. आदर्श* / 113
  - ○ ओह् बी दिन हे : इक पाठकीय प्रतिक्रिया/*कृष्णा सोबती* / 118

जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी द्वारा दीवाली के उपलक्ष्य पर आयोजित सर्वभाषीय कवि सम्मेलन में अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए प्रो० वरूण साहनी, उपकुलपति, विश्वविद्यालय जम्मू

दीवाली के उपलक्ष्य पर आयोजित सर्वभाषीय कवि सम्मेलन में क़विताएं सुनते हुए प्रतिष्ठित साहित्यकार

अंतरंग

आयुष्मान् भव

❑ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

कल तो हद ही हो गयी।

लेकिन कल की बात बाद में। पहले और बात। अम्बर ने अपनी मम्मी अल्पना से कहा कि मेरे जूतों के फीते बाँध दो और जब उसने बाँध दिए तो अम्बर झट से बोल पड़ा-आयुष्मान् भव। जैसे पैर छूने पर बड़े आशीर्वाद देते हैं। यह धार्मिक धारावाहिकों की कृपा है कि अल्ट्रामॉडर्न घरों के बच्चे भी शुद्ध संस्कृत के शब्द बोलने लगे हैं। सुनकर मैं तो दंग रह गया क्योंकि अम्बर ने अल्पना के सिर पर हाथ भी रखा था। अल्पना अप्रत्याशित आश्चर्य और बनावटी क्रोध में बोली-अच्छा, दुष्ट! और उसके गाल पर एक हल्का-सा चपत भी जड़ दिया।

लेकिन यह तो एक झाँकी थी अम्बर की शरारतों की। दो-एक साल से उसकी ऐसी शरारतों से हम लोग पुलकित होते रहे हैं। कुछ वर्ष पहले, मुज़फ्फरनगर में जब अल्पना अम्बर को ले गयी थी, तो वह उसके साथ पड़ोस में कपड़े सीनेवाली के यहाँ चला गया था। वहाँ से लौटकर अम्बर ने सिलाई मशीन का ढक्कन उतार कर दो-एक लेडीज़ रुमाल निकाल कर उन पर मशीन चलानी शुरू कर दी जैसा कि वह कपड़े सीनेवाली के यहाँ देखकर आया था। पूछने पर बोला-अभी मुझे कपड़े तैयार करके देने हैं, बातें करके मेरा समय बर्बाद मत कीजिए। जैसा कि कपड़े सीनेवाली के यहाँ उसने सुना था। वह लगातार मशीन चलाता जा रहा था। हम लोग आशंकित थे कहीं अपनी ऊंगली पर ही सिलाई न कर दे। लेकिन वैसा नहीं हुआ।

एक दिन पड़ोसी मजूमदार साहब चौराहे पर बने हनुमान मंदिर में मंगलवार को प्रसाद बाँटने के लिए और लोगों के साथ उसे भी ले गये। यह उसके लिए एक नया ही अनुभव था। वहाँ वह भी औरों के साथ प्रसाद बँटवाने लगा। कुछ देर बाद बोला-कैसे लोग हैं ये, बिना पेमैंट के ही स्वीट ले जा रहे हैं। यह उसके लिए आश्चर्य की बात थी। लेकिन हमें परम आश्चर्य तब हुआ जब उसने कहा-नाना जी, ले जाने वालों में से कोई थैंक्यू भी नहीं कह रहा, कैसे लोग हैं ये। क्योंकि उसके अनुसार ऐसे अवसर पर थैंक्यू तो कहा ही जाता

---

* *१८६-/१२, आर्य पुरी. मुज़फ्फरनगर, उ. प्र.*

है। अब इस बेचारे अम्बर को क्या मालूम कि रस्ते चलते ये लोग थैंक्यू के तकल्लुफ को नहीं जानते।

अब कल की बात .....

कल रात मैं अल्पना से विशाखापत्तनम् का यात्रा वृतांत्त लैपटॉप पर टाईप करवा रहा था और अम्बर हमारे पास ही बैठा हुआ था। इस यात्रा में वह भी हमारे साथ था। जब घूमते समय औरों के नाम आने लगे तो बोला-यहाँ तो मैं भी साथ था, मेरी एंट्री आपने अभी तक इस एपिसोड में क्यों नहीं करवाई। टी.वी. धारावाहिकों के कारण ही बच्चे क्या, बड़े भी ऐसे शब्द और मुहावरों का प्रयोग करने लगे हैं। मैं बोलता जा रहा था अल्पना टाइप कर रही थी और अन्दर महाशय मेरे आधे बोले वाक्यों को पूरा करते जा रहे थे। तो तब तक उसे चैन नहीं पड़ा जब तक मैंने यह वाक्य नहीं बोला—विशाखापत्तनम् के समुद्र तट पर पहुँचकर हम में से जो सबसे अधिक प्रफुल्लित हुआ, वह अम्बर था, जिसने वहाँ पहुँचकर कहा-व्हाट ए वंडरफुल सीन (क्या बढ़िया दृश्य है) छठी क्लास में इंगलिश मीडियम में पढ़ने का यह प्रताप था। ऐसे ही जब आर. के. बीच के गीले रेत पर उसकी बहन अदिति ने अपना नाम लिखा, तब वह पीछे कैसे रह सकता था, उसने भी उंगली से लिख दिया-अम्बर विज़िटिड हियर (अम्बर यहाँ आया। यह कैसी प्रवृत्ति है कि बच्चे तक जानते हैं कि अगले ही क्षण लहर आकर इसे मिटा देगी। मिटा दे, मिट तो सब कुछ जाएगा, तो क्या इस आशंका से कुछ किया ही न जाए? चालीस वर्ष पहले मित्रवर रामदेव त्रिपाठी से सुनी कविता की ये पंक्तियाँ याद हो आयीं....

रेत पर जो लिख रहा हूँ, धार उसको मेट देगी,
फिर किनारे पर खड़ी दुनिया कहो तो क्या कहेगी।

बाद में मुझे मालूम पड़ा कि ये पंक्तियाँ जानकी वल्लभ शास्त्री की हैं। गीतकार भारत भूषण की एक पंक्ति भी इसी आशय की है-रेत पर लिखे नाम जैसा मुझको दो घड़ी उभरना था। दो ही घड़ी सिर्फ, लेकिन ये दो घड़ी ही तो ज़िन्दगी है, उमर-भर कौन उभरा रहता है। जैसा कि जोश मलीहाबादी ने कहा है.....

ए गुंचे, तेरी जिंदगी पर दिल हिलता है,
बस एक तबस्सुम के लिए तू खिलता है,
गुंचे ने कहा-इस दुनिया में ए बाबा,
एक तबस्सुम भी किसे मिलता है।

इसलिए तभी तो एक और शायर ने कह दिया-फूल की उमर कम हो तो हो, जिन्दगी कम नहीं होती। उमर और जिन्दगी में ऐसा फर्क मैंने पहली बार सुना था। तो ये बच्चों की लीलाएँ ही हैं जो पारिवारिक जीवन में आनन्द और उल्लास भरती हैं। वरना रोज़-रोज़ की किचकिच और मारामारी में ही सारी जिंदगी निकल जाती है। वैसे भी अम्बर मेरी तीसरी पीढ़ी

में सबसे अधिक विलक्षण लग रहा है। यूँ तो अदिति, अनादि और कार्त्तिकेय भी कम नहीं हैं, तभी उन पर लिखे बिना मुझ से रहा नहीं गया। इधर एक संकट-लेखकीय संकट - मेरे सामने और आता रहता है। अपने कईं आत्मीयों पर मैं लिखता रहता हूँ। मेरे अन्य आत्मीय जब इसे पढ़ते हैं, तब उनके मन में छिपी यह ललक चाहे-अनचाहे व्यक्त हो ही जाती है कि कहीं इसमें हमारे बारे में भी तो होगा, रत्नाकर की गोपियों जैसा। उद्धव के हाथ में कृष्ण की पाती देखकर गोपियाँ पूछती हैं .....

हमको लिख्यों है कहा, हमको लिख्यों है कहा,
हमको लिख्यों है कहा, कहन सबै लगीं।

क्योंकि प्रत्येक गोपी यह समझती है कि कृष्ण ने उसके बारे में तो लिखा ही होगा। अब मुझे भी कुछ उलहाने में, कुछ शिकायत में, कुछ व्यंग्य में कहते हैं-अरे, इन्हें हमारे बारे में लिखने की कहाँ फुरसत है, ये तो महाश्वेता देवी, कुबेरनाथ राय और हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसों पर ही लिखते हैं, इनके लिए हमारी औकात ही क्या है? बात औकात की नहीं है। संस्मरण हो या समीक्षा, मैं मन से तभी लिखता हूँ, जब वह मुझे उद्वेलित कर जाती है। यों यारी-दोस्ती में औपचारिकता या संगोष्ठी के लिए, या पत्रिका और संकलनों आदि के लिए भी लिखा है, लेकिन यह लिखना पिंड छुड़ाना ही है। कविता की रचना प्रक्रिया के विषय में वर्ड्सवर्थ ने लिखा है—पिछली प्रगाढ़ अनुभूतियों का उमड़ता हुआ ज्वार, जब याद आने पर शांत समय में सँभाले नहीं सँभलता। कविता तो तभी लिखी जाती है। संस्मरण मैंने तभी लिखें हैं, जब मैं लिखे बिना नहीं रह सका। प्रसाद ने भी घनीभूत पीड़ा की, किसी दुर्दिन में आँसू के रूप में अभिव्यक्ति को कविता माना है। खैर .....

नाना जी देखिए-मम्मी मेरी कही बातों की आग में घी डाल रही हैं। मैं सुनकर एकदम स्तब्ध। यह मुहावरा। यह सुनकर उसकी मम्मी अल्पना बोली-आग में घी मैं डाल रही हूँ, तुमने नहीं कहा था यह। अम्बर को अपने मुहावरे का अनौचेत्य का पता चला। उसने तुरन्त पैंतरा बदला-आप मेरी बातों को नमक-मिर्च लगाकर कर रहीं हैं। यह दूसरा अवसर था मेरे लिए चकित होने का। अल्पना उसे होमवर्क में मुहावरे याद करने का लिए कह रही थी दो-एक दिनों से, लेकिन ये अम्बर महाशय बोलचाल में मुहावरों को इस तरह जड़ देंगे, यह तो किसी ने सोचा ही नहीं था। इस उमर में इतनी तुरन्त बुद्धि। आगे चलकर क्या करेगा, मैंने कहा। करेगा क्या, जोकर बनेगा, अल्पना बोली, टी.वी. पर छोटे मियाँओं के लाफ्टर शो देख-देखकर। कुछ-न-कुछ करने के लिए वह अकुलाता रहता है, चुपचाप तो बैठ ही नहीं सकता। सामान्य ज्ञान कुछ अधिक ही है उसमें। कभी-कभी अल्पना कह बैठती है कि दो चार मिनट के लिए भी तू क्या चुप नहीं बैठ सकता? कैसी मुसीबत है मेरी। तभी अम्बर बोल उठा-उस दिन नाना जी ही तो कह रहे थे कि यदि बंदर और बच्चा चुप बैठें तो समझिए कि कुछ गड़बड़ ही है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर के शांतिनिकेतन को देखने के लिए एक अभिभावक जब वहाँ गये तो उन्होंने देखा कि कुछ बच्चे नदी के किनारे मछली पकड़ रहे हैं, कुछ पेड़

पर चढ़कर फल तोड़ रहे हैं, कुछ और कुछ कर रहे हैं। केवल दो-एक बच्चे ही पढ़ रहे हैं। अभिभावक ने रवीन्द्र नाथ से पूछा-ये दो ही पढ़ रहे हैं बाकी क्यों नहीं? गुरुदेव बोले-मुझे इन्हीं दो की चिंता है। जिनका मन प्रकृति में न रम कर या न खेलकूद में लगकर मात्र किताब में लगा है। इन्हीं के लिए मुझे कुछ करना पड़ेगा। तो बच्चों में यदि कल्पनाधिक्य नहीं है, उछल-कूद करने की या कुछ बनाने-बिगाड़ने की प्रवृत्ति नहीं है या कुछ पूछने-समझने की धुन नहीं है, तो उनकी जड़ता है। इसको तोड़ना ही चाहिए, कुछ पूछने या करने की प्रवृत्ति उकसानी चाहिए। पढ़ने-लिखने के लिए तो सारी उम्र पड़ी है। जो बच्चों को जरा-जरा सी बातों पर रोकते-टोकते हैं, वे उनका सहज विकास रोकते हैं।

अल्पना भी कहती है स्कूल से लौटकर जिस जगह यह अपना बैग पटक देता है, अगले दिन स्कूल जाते समय वहीं से उठकर चल देता है। पढ़ाई-लिखाई में इसका मन है ही नहीं।

यह कभी फेल हुआ या पहले चार-पांच बच्चों में नहीं रहा, तो वह बोली-यह तो पहले चार-पांच बच्चों में ही रहता है।

तो फिर क्यों इसके पीछे पड़ी रहती है, मैंने कहा। अम्बर बोल पड़ा-नाना जी आप समझाइए अपनी बेटी को, मुझे हमेशा डांटती-फटकारती है। मैं यह सुनकर चकित और अल्पना-अच्छा दुष्ट, नाना जी के जाने के बाद तेरी अक्ल ठीक करूंगी। अब मैं अम्बर के सामने कैसे कहता कि इसकी नहीं तुम अपनी अक्ल ठीक करना, बड़ा होने पर सब ठीक हो जायेगा। इसीलिए इसने जो तुमसे मज़ाक में कहा था, इसका आशय था कि बुद्धिमान भव, ताकि इस बेचारे को तुम्हारी डांट-फटकार से मुक्ति मिले। वैसे हम सभी लोग चाहते हैं कि अम्बर आयुष्मान हो, आयुष्मान के साथ-साथ वर्चस्वी और तेजस्वी भी। और हमें क्या चाहिए?

लेकिन अम्बर के इस आख्यान का समापन ऐसा करना पड़ेगा, यह तो सोचा भी नहीं था।

मेरे द्वारा इस प्रकार प्रोत्साहित करने पर उसकी ऐसी हरकतें बढ़ती ही जा रही थी। दस दिन से छुट्टी मना रहा था। एक दिन डाइनिंग रूम में रखी क्रॉकरी और खाने-पीने के सामान की अलमारी खोलकर वह शॉपकीपर ही बन गया, जैसा कि कॉलोनी में एक घर में खुली दुकान में वह देखता था और हम सभी को कुछ-न-कुछ सामान लेने के लिए खेल में शामिल कर लिया। उसके पापा अरुण जी उसकी इस मौज-मस्ती को कुछ दिन से देख रहे थे, लेकिन आज उनसे नहीं रहा गया। गुस्से में बोले-शटअप, क्लोज, इट, गो एंड रीड योर बुक्स डू योर होमवर्क (चुप रहो, बंद करो इसे, जाओ और अपनी किताब पढ़ो, अपना होमवर्क करो। क्षणभर में अम्बर अपने कल्पना जगत से यथार्थ की कठोर धरती पर आ गिरा। वह समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या गलत कर रहा था। उसे समझने में कुछ देर लगी, इसी बीच अरुण जी और गर्म हो गए। अब बेचारे अम्बर की दशा देखने लायक थी। उसका

सारा बालपन गायक हो गया। निरीहता उसके चेहरे पर फैल गयी। उसने मेरी ओर देखा, क्योंकि ऐसी डांट पड़ने पर मैं उसे पुचकारता था लेकिन अब मेरी असहायता भी उससे छिपी न रह सकी। वह रुआंसा हो उठा और बड़ी बेबसी में वहां से उठकर चला गया बिना कुछ खाए-पिए।

मुझे रह-रहकर अपनी असहायता और उसकी निरीहता अब भी चुभ रही है। उस पर हर समय लाड़-प्यार बरसाने वाले उसके पापा अरुण जी उसे पिछले दस दिनों से हर समय वक्त बर्बाद करते हुए नहीं देख सके, इसलिए उनका कर्त्तव्यबोध फूट पड़ा क्योंकि हम लोग यानी नाना-नानी के होते हुए उसे डांट पड़ती नहीं थी, इसलिए उसका हौसला बहुत बढ़ गया था।

ooo

गीतिका

❑ रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

बात दिल की बता नहीं सकते
हम किसी को सता नहीं सकते
दिल जलाना सीख आये हो
दीप दिल का जला नहीं सकते
अधबर में आपने छोड़ा है
हम किसी को बता नहीं सकते
प्यार की शम्मा हम जलाते हैं
जग के तूफां बुझा नहीं सकते
हम अपने सरस मधुर गीतों को
हर किसी को सुना नहीं सकते
आपके ख्यालों में खोये हम
आपको भुला नहीं सकते
तट पै आकर स्वयं डूबे हैं
आप हम को डुबा नहीं सकते।

ooo

* डी-4 उदय हाउसिंग सोसाईटी बैजलपुर, अहमदाबाद-38005

साक्षात्कार

आज की कहानियां बाज़ारवाद की शिकार हो रही हैं : डा. नमिता सिंह

❑ राजेन्द्र परदेसी

वरिष्ठ कथाकार डा. नमिता सिंह से राजेंद्र परदेसी की बातचीत

प्रश्न : वह कौन से दबाव रहे या विवशता रही जिनके कारण आप सृजन की ओर प्रवृत्त हुईं। किन परिस्थितियों के तहत आपने लिखना शुरू किया?

उत्तर : दरअसल सृजन की ओर प्रवृत्त होने के लिये बाहरी या भीतरी विवशता नहीं होती। हम इसे दबाव कहें तो बेहतर होगा। यह दबाव उपजते हैं संवेदना के धरातल पर और वैचारिकता के स्तर पर, सोच के धरातल पर, हमारे चारों ओर जो घट रहा है वह हम किस रूप में ग्रहण करते हैं? हमारी संवेदना और अनुभूति को वह किस रूप में झकझोरता है, बेचैन करता है, हमें सोचने के लिये, विश्लेषण के लिये विवश करता है, और अंततः मजबूर करता है लिखने के लिये और यही रचनात्मकता की आधार भूमि तैयार होती है।

प्रश्न : रचनाओं में समाज का यथार्थ किस रूप में आता है, आपके विचार से वैचारिकता के साथ यथार्थ का सामंजस्य लेखन में किस रूप में प्रस्तुत होता है?

उत्तर : यथार्थ जड़ नहीं होता और हमेशा एक जैसा नहीं रहता। समय परिवर्तनशील है। हमारे जीवन में सामाजिक विकास की प्रक्रिया अनवरत चलती है, अन्ततः हमारा भी मानसिक और वैचारिक विकास गतिशील रहता है। हमारा अनुभव संसार ज्यों-ज्यों विस्तृत होता है, हमारा दृष्टिकोण भी बदलता रहता है। इसीलिये जो आज का यथार्थ है वह कल ऐसा ही नहीं रहेगा, हो सकता है वस्तुगत यथार्थ में बदलाव न आया हो, लेकिन हमारी वैचारिक परिपक्वता और चेतना के बदले हुए, बढ़े हुए स्तर में हमारी ग्रहण करने की दृष्टि बदल गई हो, इसीलिये बदलते नज़रिये के साथ यथार्थ बदलता है। हो सकता है कि एक ही विषय पर अलग-अलग समय में हमारी रचना में दो भिन्न नजरिये प्रस्तुत होते हों। यथार्थ के दो भिन्न पहलू, दो अलग-अलग रचनाओं का आधार बनते हों। सामाजिक प्रश्नों पर लिखते समय अक्सर ऐसा

होता दिखाई देता है, किसी एक सामाजिक मुद्दे पर दो रचनाओं में केंद्रीय स्वर भिन्न हो सकता है।

प्रश्न : वर्तमान में हिंदी कहानी का जो स्वरूप है क्या आप उससे संतुष्ट हैं?

उत्तर : हां, वर्तमान में कहानी का जो स्वरूप है, उससे असंतुष्ट होने का तो कोई कारण नज़र नहीं आता है। विविध विषय हैं। प्रेमचंद युगीन कथाशिल्प से लेकर इक्कीसवीं सदी की कहानी के शिल्प में बहुत बड़ी रेंज है जो कथा के विविध विषयों में भी दिखाई देती है।

प्रश्न : आज आपको नहीं लगता कि आज हिंदी कहानी और उपन्यास में यौन संबंधी विषय ज़्यादा प्रमुख हो गये हैं और साहित्य धीरे-धीरे बाज़ारवाद का हिस्सा बन रहा है?

उत्तर : साहित्य में समाज प्रतिबिंबित होता है, कहानी, उपन्यास अपने समय के समाज को ही, चित्रित करते हैं। उपन्यास को तो मानव जीवन का महाकाव्य कहा गया है। कहानी का कैनवास छोटा होता है। जिंदगी का एक छोटा हिस्सा, एक बिंदु ही उसमें व्याख्यायित हो पाता है। मानव मनोविज्ञान के बिना साहित्य अधूरा है। साहित्य जहां एक ओर सामाजिक जीवन परिवेश और मूल्यगत गतिविधियों पर टिप्पणी करता है वहीं व्यक्ति के अंतर्मन उसकी संवेदनाओं का, जटिलताओं का भी खुलासा करता है। यही साहित्य का उद्देश्य है। व्यक्ति और समाज उसके वाह्य परिवेश और अंतर्मन की जटिलताओं के बारे में ज्ञानवृद्धि का सदैव से साहित्य ही एक माध्यम रहा है। इसीलिये यदि यौन इच्छाओं, आकांक्षाओं को किसी रूप में विषय बनाया जाता है तो इसमें गलत क्या है? यौन समस्या या दलित आकांक्षाएं आखिर किसी-न-किसी रूप में मानव स्वभाव से जुड़ी हुई हैं।

हां, अगर यौन समस्याएं या यौन अपराध जैसे प्रसंग विषय के साथ मेल नहीं खाते या सस्ते विवरणों से भरे हुए हैं, सनसनीखेज बनाने के लिए अश्लीलता के साथ परोसे गये हैं तो निश्चय ही यह साहित्यिकता नहीं है बल्कि बाज़ारवाद का हिस्सा है। सवाल यह है कि इनके माध्मय से हम मानव-जीवन के बारे में मानव-समाज के बारे में क्या कुछ नया दे रहे हैं? क्या यह हमारे ज्ञान में कोई इज़ाफा कर रहा है, क्या यह मनुष्य के भीतरी संसार के बारे में कुछ नई सूचना दे रहा है, तब तो यह सार्थक है। साहित्य यदि पाठक के भीतर किसी प्रकार के विकार को, विकृति को जन्म दे रहा है या उसे कुंठित कर रहा है तो फिर वह साहित्य नहीं है।

प्रश्न : क्या साहित्य का उद्देश्य मानसिक विकृतियों और अश्लीलता को ही पाठकों के सम्मुख परोसना है? आज तो लगता है ऐसा ही साहित्य चर्चा के केंद्र में आ रहा है?

उत्तर : आज साहित्य में अक्सर यह प्रवृत्ति भी दिखाई दे रही है। मैं फिर इस बात को कहूंगी कि अगर मानसिक असंतुलन किसी सामाजिक प्रक्रिया को पाठक के सामने प्रस्तुत करता है तो वह निश्चित रूप से साहित्य का हिस्सा है। सामाजिक विद्रूपताएं अगर हैं तो वे रचना में आयेंगी। किस रूप में वे साहित्य का हिस्सा बने यह रचनाकार के उद्देश्य पर निर्भर करता है। यूं तो लोलिता' या 'यामा द पिट', जैसे उपन्यास भी विश्व साहित्य का हिस्सा हैं और एक जमाने से पढ़े जा रहे हैं लेकिन निश्चित रूप से यह असंतुलित और विकृत व्यक्तित्व की और सामाजिक विद्रूपताओं की कहानियां हैं। इसके विपरीत मैडम बोवेरी या डी०एच० लारेंस का लेडी चैटरलीज लवर अपने समय के सामंती समाजों पर टिप्पणी करते हैं।

प्रश्न : प्रेमचंद के समय की कहानियों के मुकाबले आज की कहानी क्या आपको अधिक श्रेष्ठ लगती है? आज की कहानियों का मूल्यांकन आप किस रूप में करतीं हैं?

उत्तर : प्रेमचंद युगीन और आज की कहानी में श्रेष्ठता के हिसाब से अंक देना तो ठीक नहीं होगा। हर युग का साहित्य अपने समय के वातावरण का, अपने समय के समाज और उनकी समस्याओं का साक्षी होता है। प्रेमचंद युग राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष का युग था। किसान, मजदूरों के आंदोलनों का युग था। दलितों और स्त्रियों के लिये युगों की दासता और अमानवीयता के विरुद्ध नवोन्मेष का युग था। सामाजिक-सांस्कृतिक पटल पर एकसाथ विस्मयकारी परिवर्तन हो रहे थे और ये सब उस बड़े परिवर्तन का हिस्सा थे। राजनैतिक दासता से मुक्ति का स्वर मनुष्य की स्वतंत्र चेतना और सामाजिक चेतना के रूप में भी मुखर हो रहा था और ये उस युग की कहानी को नया स्वर, नया रूप भी दे रहे थे।

निश्चित रूप से आज पूरा परिदृश्य बदला हुआ है। आज के समाज की समस्याएं एकदम अलग हैं। आज सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप भी बिल्कुल दूसरे धरातल पर है। आज जातिवाद, साम्प्रदायिकता जैसी समस्याएं सामाजिक बुराई के रूप में कम लेकिन राजनैतिक रूप से शीर्ष पर हैं। नारी स्वातंत्र्य के स्वर आज चेतना के स्तर पर मुखर हो रहे हैं लेकिन दूसरी ओर देह-विमर्श के नाम पर नारी आंदोलन बाज़ारवाद का हिस्सा भी बन रहा है। सामाजिक विसंगतियां आज अपने चरम पर हैं, कहीं दो जून के भोज़न के लिए औरत अपनी देह बेच रही है। अपनी गोद का मोल लगा रही हैं, तो कहीं एक रात में लाख नहीं, करोड़ों के बारे-न्यारे एक नौजवान कर डालता है। एक ओर भूख और अकाल से आदमी निजात नहीं पा रहा है, दूसरी ओर हाईटेक युवा है जो बीस-बाइस साल की उम्र में लाखों कमा रहा है। काले धन की संस्कृति में खेलता हुआ नशेड़ी युवा डिस्को में मदमस्त नाच रहा है। आज का समय चरम विरोधाभासों का समय है। इस संदर्भ में यह निश्चित रूप से स्वीकार करना होगा कि प्रेमचंद युगीन कहानियां अपने समय का पूरा

प्रतिनिधित्व करने में सक्षम हैं लेकिन आज के समय की चुनौतियां और वास्तविकताएं अभी आज के लेखक पकड़ नहीं पा रहे हैं। परिस्थितियों का विश्लेषण गहरे सोच और वैचारिकता से ही संभव हो सकता है। कभी ऐसा भी लगता है कि आज की कहानियां भी बाज़ारवाद का शिकार हो रहीं हैं और क्या बिकेगा, जैसे सवाल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रचनाकारों पर भी हावी रहते हैं।

प्रश्न : शिल्प और भाषा की दृष्टि से आज की कहानी कितनी आगे बढ़ी है और कितनी सार्थक है?

उत्तर : शिल्प का जहां तक सवाल है निश्चित रूप से प्रेमचंद से लेकर आज तक यह निरंतर विकास की प्रक्रिया में है। सीधे-सपाट लेखन से हटकर आज भाषा और शैली के स्तर पर नये-नये प्रयोग होते रहे हैं। व्यक्ति के मनोविज्ञान के साथ-साथ सामाजिक मनोविज्ञान के विविध आयाम तथा भावबोध की विशिष्टता आज के साहित्य में भरपूर है। 'नयी कहानी' में प्रेमचंद युगीन विषयों से आगे के समय की कहानियां थीं। व्यक्ति आधारित कहानियां थीं, इसके साथ ही नितांत नया शिल्प था, नई भाषा, नई भंगिमा थी, कलात्मकता की नई ऊंचाइयां भी थीं।

लेकिन अक्सर एक सवाल उठता है, क्या कारण है कि प्रेमचंद आज भी सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखक हैं। साधारण पाठक को आज भी प्रेमचंद अपना मन्तव्य संप्रेषित कर पाते हैं और शिक्षा और चेतना के व्यापक प्रचार-प्रसार के बावजूद आज के लेखक का पाठक वर्ग बेहद सीमित है। इसलिये साहित्य में शिल्प और कला के रूप, उसकी संप्रेषणीयता और सार्थकता पर नये सिरे से बहस की जा सकती है।

प्रश्न : साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन भी होता है, फिर साहित्य में वैचारिकता का कितना महत्त्व हो सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वैचारिकता साहित्य के उद्देश्यों को धूमिल नहीं करती?

उत्तर : साहित्य के मंतव्य की शुरुआत तो मनोरंजन से ही होती है, लेकिन मनोरंजन के कई साधन हो सकते हैं, अनगिनत रुप हो सकते हैं। साहित्य और रचनाकर्म का सीधा संबंध बौद्धिकता से है। मस्तिष्क और वैचारिकता से है। हमारी बौद्धिकता और वैचारिकता हमें समाज से, अपने परिवेश से जोड़ती है। हमारी चेतना में व्यक्ति और समाज के सरोकार और व्यापक चिंताएं हमारी सोच को और विचारों को निर्धारित करती है और दिशा प्रदान करती है। अत: रचनाकर्म में वैचारिकता के साथ जब व्यापक सामाजिक सरोकार जुड़े होते हैं तो वे खुद-बखुद देशकाल की परिधि को छूने लगते हैं। ऐसी स्थिति में रचनाकर्म सोद्देश्य तो होगा ही। यहां पर आकर लेखन के उद्देश्यों में लोकरंजन और मनोरंजन दोनों का समावेश हो जाता है।

प्रश्न : आप लंबे समय से लेखन में सक्रिय हैं और हिंदी की जानी-मानी लेखिका हैं, क्या आप अपने लेखन से संतुष्ट हैं? आपको लगता है कि आपका सही मूल्यांकन अभी होना बाकी है?

उत्तर : इस बारे में ज़्यादा कहना बड़बोलापन लग सकता है लेकिन मैंने कहानियां लिखीं जब मुझे बहुत ज़रूरी लगा। दरअसल मैं पहले सोशल एक्टीविस्ट हूं और फिर बाद में लेखक हूं। दलितों के लिये सामाजिक न्याय और बराबरी की लड़ाई विभिन्न मंचों से हम लोग लड़ते रहे हैं। अल्पसंख्यकों और औरतों के लिये भी उनकी बराबरी और अधिकारों की लड़ाई हमारे कर्मक्षेत्र में शामिल रही है। अपनी सामाजिक रूप से सक्रिय भूमिका को अपने लेखन के लिए मैं बहुत जरूरी समझती हूं लेकिन हुआ यह है कि इन कामों में अधिक मशगूल होने से लेखन पिछड़ने लगता है। इसके बावजूद मेरे लिए ये सामाजिक सरोकार बहुत ज़रूरी हैं और इन्हीं से उपजे दबाव मुझ से लेखन कराते हैं। मुझे रचनात्मकता के लिये न सिर्फ प्रेरित बल्कि मजबूर करते हैं।

इसीलिए मेरी हमेशा कोशिश रही है कि अपने जीवन्त सामाजिक अनुभवों को अपनी कहानियों में ढालूं। मेरा उपन्यास 'अपनी सलीबें' न सिर्फ दलित समस्या पर है बल्कि वह एक स्वर्ण मानसिकता के क्रमशः रूपान्तरण की कहानी है जो अंततः दलितों के प्रति सच्ची हमदर्दी में बदलती है और उस वर्ग के सामाजिक न्याय की लड़ाई में शामिल होती है। मैंने महसूस किया कि हम सामाजिक समरसता की बातें, भाषणबाजी करते हैं लेकिन अपनी संस्कारगत मानसिकता के बदलाव के लिये प्रयत्न नहीं करते। निकटतम संबंध बनाकर पूरी सहानुभूति के साथ, उनकी लड़ाई में शामिल होकर ही स्वर्ण मानसिकता को, जातिगत उच्चता के भाव से पगी सामन्ती मानसिकता को बदला जा सकता है। इसी तरह सांप्रदायिकता के सवाल, जातिगत संघर्षों के सवाल मेरे लिए बहुत अहम् हैं। चिंता का कारण है और इसीलिए बार-बार मेरी कहानियों का कथ्य बनते हैं। मैंने यह भी कोशिश की कि नारी-विमर्श के नाम पर उस लफ्फाजी भरे सतही युद्ध से बचूं। जो पूरे समाज का सच नहीं है। नारी-विमर्श स्त्री बनाम पुरुष के बीच युद्ध जैसा माहौल बनाता है और गाली-गलौच के स्तर का विषय बन जाता है। मेरा मानना है कि स्त्री-पुरुष दोनों ही सामंती समाज के अंग हैं। स्त्री चेतना के साथ-साथ संपूर्ण सामाजिक चेतना के प्रचार-प्रसार का प्रयास होना चाहिये, अलग-अलग टुकड़ों में सामाजिक उत्थान की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। शुक्र है अब धीरे-धीरे दूसरे लोग भी इस विचार को तस्लीम करने लगे हैं वरना कुछ समय पहले तक सशक्तीकरण की यह अवधारणा नक्कारखाने में तूती जैसी लगती थी।

जहां तक मूल्यांकन का सवाल है, इस आपाधापी प्रयोजनवादी व्यापारी युग में बिना

पब्लिक रिलेशनिंग के, बिना संपादकों, आलोचकों के साथ घनिष्ट संबंध स्थापित किये किसे क्या मिलता है? लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीत रहा है, इन रचनाओं का कथ्य और अधिक स्पष्ट हो रहा है, पिछले 30 वर्षों से सांप्रदायिकता की जिन समस्याओं को, उनके कारणों को मैं अपने लेखन का विषय बनाती रही हूं। अब लोगों को साफ दिख रहा है।

मैं यह तो नहीं कहूंगी कि मूल्यांकन नहीं हो रहा है। आखिर इतने शोध हो रहे हैं। वे लोग मेरी रचनाओं के माध्यम से ही मुझे जानते हैं लेकिन मुझे यह ज़रूर लगता है कि किराये के घोड़े दौड़ चुके होंगे और बाज़ार की धूल बैठेगी तथा स्थितियां अधिक स्पष्ट होंगी और उचित मूल्यांकन होगा। मुझे जल्दी नहीं है, भविष्य पर भरोसा है। मेरे सामने न सही मेरे बाद ही सही।

प्रश्न : इधर हाल में आप क्या लिख रहीं हैं?

उत्तर : इधर कुछेक कहानियां लिखी हैं जो छपी भी हैं। अभी नया कहानी संग्रह आया है। संग्रह का नाम है 'मिशन जंगल और गिनीपिग' इस संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें दो कहानियां विज्ञान फैंटेसी के रूप में हैं लेकिन वे गहन सामाजिक प्रश्नों से जुड़ी हैं। आज की आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में आगे आने वाले समाज का क्या स्वरूप होगा इसे '2051 का एक दिन' कहानी में कहने की कोशिश की है। 'मिशन जंगल और गिनीपिग' कहानी मानव क्लोनिंग और जैनेटिक इंजीनियरिंग की टैक्नालॉजी को बढ़े सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों से जोड़ती है। मुस्लिम समाज की समस्याओं तथा मानसिकता पर आधारित एक नॉवलेट तैयार है। उसे प्रेस में देना है। मुस्लिम समाज की मनोदशा जो खास तौर से 1992 के बाद और फिर 2002 के बाद बदली है उसने एक सामाजिक गैप पैदा किया गया है। विभिन्न समाज अपने-आप में सिकुड़ रहे हैं। आज आतंकवाद एक बड़ी समस्या के रूप में है इसके सामाजिक और राजनैतिक कारण भी हैं। उनकी भी गहराई से पड़ताल होनी चाहिए। इन्हीं परिस्थितियों और मनोभावों पर यह उपन्यास 'लेडीज क्लब' है। इसके अनेक अंश विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, कुछेक कहानियां भी दिमाग में पक चुकी हैं। जरा फुर्सत मिलें तो कागज पे परोस दूं।

प्रश्न : आपने अपने एक लेख में कहा कि सांप्रदायिकता जैसी समस्या हमारी लेखिकाओं को नहीं छूती, क्या आशय है आपका इससे?

उत्तर : दरअसल हमारे कुछ शीर्ष संपादकों और आलोचकों ने एक खांचा महिला लेखकों के लिए बना दिया है कि स्त्रियां केवल अपने जीवन और अपनी समस्याओं की गाथा ही लिखें। यह कुछ ऐसी ही स्थापना है कि दलितों के विषय में दलित ही लिखें और स्त्री विषयों पर स्त्रियां ही लिखेंगी। अनुभूति की प्रामाणिकता का जहां

तक सवाल है, यह अवधारणा ठीक है लेकिन एक रचनाकार का संसार विस्तृत होता है। उसके सरोकार उसकी चिंताएं और विषय व्यापक होते हैं। लेखक का मनोजगत समाज के सभी विषयों को छूता है।

पिछले समय में स्त्री-विमर्श की अवधारणा संकुचित हुई है। मेरा मानना है कि लिंग भेद पर आधारित इस समाज में स्त्री मुक्ति के लिए संघर्ष पूरी सामंती व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष है। सामंती मानसिकता के विरुद्ध है जिसमें पूरे समाज की व्यापक रूप से भागीदारी ज़रूरी है। अत: संघर्ष का क्षेत्र केवल स्त्री बनाम पुरुष नहीं है। बड़े सामाजिक प्रश्न हमारी लेखिकाओं को आकर्षित नहीं करते? मेरा मानना है कि आज हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या सांप्रदायिकता की है। क्या हम स्त्रियां अपने ही दुख-दर्द में डूबी रहेंगी? मेरा मानना है कि स्त्री-विमर्श के घेरे में ये बड़े सामाजिक प्रश्न भी आने चाहिए।

प्रश्न : आप यह बात इसलिए तो नहीं कह रही हैं कि आपकी बहुत-सी कहानियां सांप्रदायिकता की समस्या के विभिन्न मुद्दों से जुड़ी हैं। वैसे एक बात पूछना चाहूंगा कि आपके यहां यह विषय इतना प्रमुख क्यों है?

उत्तर : अलीगढ़ में रहते हुए मैंने अनुभव किया कि यह शहर हिंदुस्तान का मिनियेचर है। यहां आने पर होने वाले सांप्रदायिक दंगे मेरे लिए नया अनुभव थे। उस समय जो इन हालात पर बेचैनी थी, उसके तहत मैंने सामाजिक स्तर पर बहुत काम किया। 1968 से लेकर विशेष रूप से 1992-93 तक जो सांप्रदायिक दंगे झेले और सांप्रदायिक राजनीति से परिचय हुआ। सांप्रदायिकता के इतने बदलते चेहरे देखे कि समझ में आया कि जो सतह पर दिखाई और सुनाई दे रहा है, सच उससे बिल्कुल अलग होता है। कर्फ्यू के दौरान भीषण दंगों के बीच मैंने विभिन्न पत्रों के लिए रिपोर्टिंग की, लोगों के बीच रहकर काम किया, विवरण तैयार किये। ये सब मेरी ढेर सारी कहानियों के विषय बने हैं। मैंने महसूस किया कि लोग दूसरे समुदायों से परस्पर इतने अपरिचित हैं कि वे उनके सामान्य जीवन, मानसिकता, उनकी समस्याओं और यहां तक कि रहन-सहन को भी नहीं जानते जो दुखद स्थिति है। इसलिये विभिन्न समाजों में अलगाव की स्थिति है जो बढ़ रही है। मेरे यही अनुभव इन कहानियों में हैं।

प्रश्न : आपने जातिवादी संघर्षों की बात की, आपकी रचनाओं में यह समस्या कितनी आई है?

उत्तर : मेरा उपन्यास 'अपनी सलीबें' दलितों के प्रति स्वर्ण समाज के पूर्वाग्रहों को दिखाता है, कैसे ये पूर्वाग्रह दूर हो सकते हैं, इस पर कुछ कहने की कोशिश की है, कुछ कहानियां भी इसी विषय पर हैं।

प्रश्न : नई पीढ़ी को आप कोई संदेश देना चाहेंगी।

उत्तर : मैं नई पीढ़ी को क्या संदेश दूंगी। वह हमसे ज़्यादा समझदार हैं, व्यावहारिक है, दो किताबें छपने के बाद ही बड़े-बड़े इनाम, सम्मान लेना जानती है। बाज़ारवाद के इस दौर में हम तो परंपरावादी लोग हैं जहां सिखाया जाता है कि एकसाथ इतना तेज मत चलो, ठोकर लग जायेगी... कि हमारा अपनापन, हमारे स्वाभिमान की देन है, कि रचना में दम होगा तो कभी-न-कभी खुद बोलेगी कि छपने की जल्दी मत करो। पहले खूब पढ़ो और तब लिखना शुरू करो। मुझे नहीं लगता कि यह बातें नई पीढ़ी को अच्छी लगेंगी।

संपर्क

डॉ. नमिता सिंह
संपादक 'वर्तमान साहित्य'
28. एम.आई.जी
अवन्तिका-1, रामघाट रोड
अलीगढ़ (उ.प्र.)-202001

प्रस्तुति- राजेंद्र परदेसी
बी-1118 इन्दिरा नगर
लखनऊ-226016
मोबाईल 09415045584

ग़ज़ल

❑ चांद शेरी

मंज़िल की जुस्तजू में है इंसान देखिए
आँखें बिछाए राह में तूफान देखिए

सर पर है धूप और क़दम गर्म रेत पर
ऐसे सफ़र पे छाँव है कुरबान देखिए

बादल गरज रहे हैं कड़कती हैं बिजलियाँ
तामीरे-आशियां का ये अरमान देखिए

इस दिल को उसके दर्द की पहचान हो गई
लेकिन वो दर्द दे के है अन्जान देखिए

अहले चमन चले हैं इसे ख़ुद उजाड़ने
'शेरी' हरा-भरा ये गुलिस्तान देखिए

ooo

** के 30 आई पी आई ए रोड़ नं 1, कोटा - 5 राज. मो० 09829098530*

पर्वतों-सा दुःख

❑ हरिशंकर सक्सेना

ज़िन्दगी हर रंग में टकरा रही है

मौत के मुख से निकलकर आ गया जब
ज़िन्दगी को फिर नये ढंग से निहारा
हाशिए पर ठेलता कानून निर्मम
ख़ून के रिश्ते यहाँ करते किनारा

पर्वतों-सा दुख सहा तो जान पाया
ज़िन्दगी उपहास करती जा रही है

सिरफिरा है मन, भटकता-ढूँढता सुख
दिव्यदृष्टि है नहीं 'संजय' सरीखी
धैर्य सारा चुक गया. भय मुँह चिढ़ाता
होश में आने की पीड़ा बहुत तीखी

मुस्कुराहट फँस गई अब घोर तम में
जुगनुओं की ज्योति भी मुरझा रही है

मैं समय की चेतना का पक्षधर हूँ
पर, निराशा ने मुझे निर्बल बनाया
टूटकर भी मैं अभी हारा नहीं हूँ
गिर गया, अनजान लोगों ने उठाया

लेखनी का शौर्य जीवन से जुड़ा है
'शक्ति-पूजा' की घड़ी फिर आ रही है।

ooo

* 145, कर्मचारीनगर, बरेली (उ.प्र.) 243122

नासूर

❑ ज्योतीश्वर पथिक

नदी बहती है
शांत, उदास - !
सुनसान, वीरान - !!
क्योंकि अब वह यहां नहीं रहता
वीरान है अब
गांव का चौपाल
सांझ सवेरे
आतंक के साए
घेरे रहते हैं.....
न जाने कब कोई नकाबपोश - !
नाचने लगे
महाकाल का तांडव
गांव से बाहर कब्रिस्तान पर
एक शिलालेख पर
लिखी जाएगी उसकी कहानी
मैंने सहा है दर्द
अपनों से बिछुड़ने का
सब को छोड़ने का
अब यहां कोई नहीं रहता
यहां रहता है एहसास, बस - !
वह भी उस बस्ती का हिस्सा था
उसकी सांसों की महक
महकाती थी हरियाले खेतों को
उसकी हंसी
मंदिरों की घंटियों के साथ खनकती थी
मगर अब वह यहां नहीं रहता
एक कटे अंग की तरह
पल-पल कचोटती है उसकी कमी
उसकी जुदाई का दर्द
रह गया है शेष
बन कर अवशेष
अब वह यहां नहीं रहता - !

०००

बेटियां

❑ पृथ्वीनाथ मधुप

I

ज़मीन-आसमान-
नदिया और हवा का-
ढेर सारा प्यार पा
हरियाती इठलाती पौध
दूसरी ज़मीन के लिये
उखाड़ दी जाती-/ एक दिन
नियति इसकी यही।

मिनट-व-मिनट अपने को-
घला-खपा
दामन थाम पूरी ताक़त लगा-
कड़े श्रम का
जाप करती एक ही मंत्र का -
'वातावरण में घुली रहे मधुरता/सदा'
कैसी भी हो-
ज़मीन आसमान और हवा?

II

संवरी क्यारियों में-
शालामारों की
शबनमी-हारों सजी
इन्द्रधनुषी नाज़ुक पंखुरियों पर
पहली रश्मि अरुण की-
जो प्यारी कविता रचती
बेटियाँ हैं।

---

* -58/7, 'शांतासदन', सरस्वती विहार, तालाब-तिल्लो, जम्मू-180002.

शाखों पर चिनारों की-
सघन हरियालियों ओट,
फूलों-लदी डालियों पर-
बादाम के बिरवों की,
गंध बिखेरती-
बौराई अमराइयों में
पोशनूल, बुलबुल भौंरे-
व पगलाई - सी कोयल
जो साज़ छेड़ती
मधुर-मधिर-/ वह आवाज़
बेटियाँ हैं।
समझ हैं-
हर धड़कन की
और व्याख्या भी।
शरद-दंशित
खिसकती बेल की-
इस्पाती आधार की पकड़ हैं।
चुक रही साँसों की-
संजीवनी हैं-
बेटियाँ।

शीतल-/ सहलाहट भरे
राहत से भरपूर
फाहे हैं-
सुलगते / टीसते / रिसते-
ज़ख्मों पर
सिर्फ मतलब से-
मतलब नहीं हैं -
बेटियाँ।

क्या होता -
होना चमन का -
न होते -
रंग, सुगन्ध और हंसी-
फूलों की

भेजे में बात आ जायेगी-
दुनियाँ की कभी
क्या होती हैं-
बेटियाँ।

III

जीत जाती-
अपने ही खून की उपेक्षा।
झुकी रीढ़ पर-
भारी बोझ उठा-
विवशता का
दुर्गम-अकल्पित रास्तों पर-
वृद्धाश्रमों के
थरथराती- / हड्डी-हड्डी टाँगें-
बुझी-झुकी नज़रें
पकड़ की धार खो चुके
बगैर लाठी के साथ के हाथ
डगमग-डगमग होते क़दम
निकल पड़ते।
खड़ी हो जाती सामने-
ज़माने की काली आँधी के
पूरा जीवट-
चट्टानी इरादा ले-
बेटियाँ।

ooo

गंगा गंगा है

❑ डॉ. निर्मल विनोद

चाहे, बन्द गली का,
अन्धा कोना मुझ में
फिर भी, शुभ ऋतुओं का-
पिघला सोना मुझ में

चाहे भीतर का मौसम,
बेहद उदास है
फिर भी, खिलती कलियों का
मुझ में उजास है
इस उजास का -
हास-विलास सलोना मुझ में
चाहे बन्द गली का
अन्धा कोना मुझ में

सावन नीरस सही,
मगर, आखिर है सावन
झोली में होगा,
अवश्य ही छींटा पावन
युग का सपना हरा,
कोई तो होगा मुझ में
चाहे बन्द गली का,
अन्धा कोना मुझ में

मैली सही, मगर फिर भी,
गंगा, गंगा है
इसके पीछे खड़ी,
कहीं, कंचनचंगा है
मैली धारा पर,
फूलों का दोना मुझ में
चाहे बन्द गली का,
अन्धा कोना मुझ में

ooo

अस्मिता की पहचान

❑ प्रेम विज

कभी आपने देखा है
स्वयं को
खूंटी पर टंगे वस्त्र की तरह
लोग अक्सर खूंटी पर
यादें टांग देते हैं
पुरखों की अस्थियां भी
गंगा में विसर्जित करने से पूर्व
लोग टांग देते हैं
खूंटी पर
कुछ लोग खूंटी पर
ईमान भी टांग देते हैं
यह खूंटी की हिम्मत है कि
वह धरोहर के रूप में
सब कुछ सहेजे रखती है
पुरखों की अस्थियां
आदमी का अस्तित्व
उस की अस्मिता और ईमान को भी
और फिर मांगने पर
जस की तस चदरिया धर देती है
दरअसल खूंटी
अस्मिता की पहचान है हमारी
जिस पर हमारे पुरखों की
असंख्य परी कथाएं तो
डेरा डाले ही रहती हैं
टंगे रहते हैं आशीर्वाद
जो बोधी वृक्ष की तरह
हम में
ज्ञान की अनन्त सम्भावनाएं
जगाते हैं।

ooo

* मकान नं, 1284, सैक्टर 37-बी चण्डीगढ़—160 036

इन्तजार करता घर

❑ लालित्य ललित

धीमी आवाज़ में
बतियाना चाहिए
धीमी आंच पर पकी रोटी
का स्वाद होता है सदियों से निराला
मोटा लाला कमाता है मुनाफा दर मुनाफा
नियति का चक्र है यही
यहीं मरना और यहीं जीना है
कोई सीढ़ी बना कर तर गया
कोई लगा रहा दीवार पर पोस्टर
सरकारी कर्मचारी 'रोस्टर' पर अटक गया
प्रमोशन कौन नहीं चाहता
लड़की, लड़का, नई नवेली, नया नवेला
सास भी और ससुर भी, मां भी और पिता भी
सबकी इच्छाएं अनन्त हैं
एक पूरी हुई नहीं कि दूसरी मस्तक पर आ बैठी
ध्यान से रहिए, मनन कीजिए
माया मोह में क्या रखा है
विचारक प्रवचन में कथा बांचते हैं
लोग सुना-अनसुना करते हुए
निकल जाते हैं
असली श्रोता वही होते हैं
घर में बुजुर्ग, बहू-बेटों के सताए हुए
गाड़ी धीरे चलाइए, जान का खतरा है
पर कौन चलाता है धीरे गाड़ी
सब ज़रूरत से ज़्यादा समझदार हैं
लोग बड़े मक्कार हैं, कायर तो हैं ही
दबे स्वर में बातें जरूर करेंगे
इधर की उधर
लगता है कभी-कभी इस माया जाल में
जो फंस गया वो अटक गया
आप कितना ही सुलझा लो नहीं सुलझा पाओगे
यह बंधन ही ऐसा है।
स्पर्श से घिरी दुनिया के लोग
अपने चक्करों में लगे हैं
अलग तरह के चक्कर
हर चक्कर से पहले लाल पीली और
हरी बत्तियों का खेल मुंह बायें खड़ा है
खड़ीं हैं औरतें कामकाजी
शाम के समय बस स्टाप पर
कनखियों से घूर रही पुरुष आंखें
वे परेशान हैं।
इन्हें बिल्कुल परेशान नहीं होना चाहिए

---

* नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नेहरू भवन 5, इस्टीट्यूशनल एरिया वसंत कुंज, नई दिल्ली - 110070

घूरता है तो घूरने दें
यह उनकी स्वाभाविक क्रिया है
यह कोई नई बात नहीं
पर हमें हर समय मुस्तैद भी रहना है
चौकस भी रहना है
चाहे हो गलियारा, चौपाल, घर-बाहर
या बस स्टाप या आफिस
उतना ही खुलें
जितनी आवश्यकता हो
जरूरत से ज्यादा खुलापन
कई तरह की शिकायतें दे जाता है
जिनकी सुनवाई फिर कहीं नहीं
दर्ज होती
अपनों से ही अपमानित
अपनों से ही शर्मिन्दा होना
कौन चाहता है
क्या आप चाहती हैं
इस तरह की जग हंसाई?
बिल्कुल नहीं।
तो आराम से बायें देखें फिर दायें देखें
आसानी से
सावधानी से
सड़क पार कर लीजिए
आपने घर पहुंचना है
घर पर आपकी मां
आपके पति
आपके छोटे बच्चे
आप का घर
आपकी प्रतीक्षा कर रहा है
और प्रतीक्षा कर रही है
आपकी रसोई
जहां आपने अपने परिवार के
लिए भोजन बनाना है
रोज की तरह-
समय से घर पहुंचिए
घर पर इंतजार हो रहा है।

ooo

रंगारी

❑ रोहिणी गंधर्व सिंह

मैं परम्परा को
निभा रही थी
अंधे बहरे गूंगों
के बीच
गली में रंगारी का चिल्लाना
कपड़े रंगवा लो चूनरी रंगवा लो
उसके शब्द मेरी आत्मा
को रुला रहे थे
जब मरता है कोई
मैं नहीं रोती
जब टूटती हैं चूड़ियां
तब दर्द होता है
ऐसा कौन है जो मेरे
भीतर रोता है
यह मैं नहीं श्रृंगार रोता है
अपनी रुलाई को दबाते हुए
रंगारी से कहा
यहां तेरा क्या काम
मेरी गली मत आना
वह समझ गया
सफेद लिबास की भाषा
अपने बूढ़े शब्दों में बोला
सफेद का अर्थ तूने
समझा नहीं है
सफेद का अर्थ एकदम साफ है
जो रंग चाहे तू रंग ले

---

* मकान नं, 230 ए. गांधीनगर, जम्मू

चाहे भक्ति का रंग
चाहे शक्ति का रंग
चाहे गृहस्थी का रंग
रंग से ही जीवन चलता है
तभी तो तेरे अंगों में
बहने वाला खून अभी
तक लाल है
मैं ऐसा सुनते ही
टेसू के पेड़ से लिपट गयी
और मैंहदी के पत्तों को
अपनी हथेलियों पर
रगड़ने लगी
अपने खून के रंग में
बहने लगी
रंगारी जाते-जाते बोला
सफेद रंग को रंगने के
मैं कम दाम लेता हूँ

ooo

उन्होंने भी मनाई दीवाली

❑ अमृतलाल मदान

उन्होंने भी मनाई दीवाली
कब?
सब सोए हुए थे जब।
और ऊँघता-ऊँघता सूरज
अंगड़ाई ले रहा था
जगमग अमावस्या को
विदाई दे रहा था

अचानक वे सड़कों पर पैदा हुए
और सफ़ेदपोश गलियों में फैल गए
काले कुकरमुत्तों की तरह।

कोयला कोयला चेहरे
कीच कीच कपड़े
रस्सी रस्सी बाल
जाने किन गुदड़ियों के लाल
कचरा चोर बाल गोपाल
झोलों में डालने लगे चुनचुन कर
जली फुलझड़ियों की तीलियाँ
इन्हें बेच कर वे खरीदेंगे
माँ बहनों की कुछ मुस्कानें
। आठ दस बीड़ियाँ।

कुछ अधजली फुलझड़ियाँ भी
उनके हाथ लगी सौभाग्य से
केसरी सफेद हरी अधजली फुलझड़ी
जब कचरे की आग पर जलाने लगे
तीनों धुएँ मिलकर
इक झंडा सा बनाने लगे
और यूं उन्होंने दीवाली भी मनाई
आज़ादी की साठवीं जयंती भी मनाई
बधाई हो बधाई। बधाई मेरे भाई।

ooo

* सार शब्द कुंज 623, प्रोफेसर कॉलोनी, कैथल-136027 (हरि.)

मेरे शहर के परिंदे

❑ कृष्ण कुमार शर्मा

कई शामें गुज़री
मेरे शहर के परिंदे
घरों को नहीं लौटे हैं।
हर शाम की लालिमा में
ड्योढ़ी करती है इंतज़ार
परिंदों का टिकटिकी लगाए।
इंतज़ार तब तक
जब तक शाम की लालिमा को
रात की कालिख नहीं निगल जाती।
लेकिन घरों के आंगन
आधी रात को अक्सर भर जाते हैं
परिंदों के टूटे पंखो से।
कभी चील के पंख तो कभी फाख़्ता के
मोर, मैना, कोयल, चिड़िया, कौवा, गि
सभी पक्षियों के टूटे पंख आंगन में मिले हैं।
ड्योढ़ी और आंगन
हर सुबह तन्हाई में
गले मिल खूब रोते हैं एक साथ।
उन दोनों ने देखा है वह मंज़र
जब पक्षी घरों से बाहर निकले,
उस समय सभी पक्षियों के पं
साबुत और एक जैसे थे।

ooo

* पुरखू - जम्मू। मो० 094191-84412

मन

❑ वरुण सुथरा

जिसकी तू राह तके है प्राणी
वह तो तेरे भीतर है,
किसके आंगन ढूँढ रहा तू
वह तो तेरे ही घर है

तेरा अपना मानस ही तो
हर शक्ति का कोष है
यहाँ-वहाँ क्या खोज रहा तू
सच्चा सुख तो संतोष है

हर कृत्रिम साधन को परखा,
फिर भी उतनी ही लगती है
सर्दी, गर्मी, बरखा

जिसको भी तूने अपना जाना
आया जब संकट, उसने
ही तुझे न पहचाना

क्यों द्वार-द्वार भटकता है
मंदिर के पत्थर को छोड़ क्यों
मानव के दर सर पटकता है

बात मान ले सुथरा की
कहे बावरा हर पल
तेरे अन्दर ही छिपा
हर संकट का हल

ooo

शब्दों का व्यापार

❑ कृष्णा कुमारी

आजकल
शब्दों का व्यापार
चल रहा है धड़ल्ले से
काफ़ी तेज़ी है
इन के भावों पर
शब्दों के सौदागर
देखते ही देखते
खेलने लगते हैं लाखों में
और क्रेता की भी
रहती हैं पाँचों उँगलियाँ घी में
जब नौकरियों के दाम
आसमान छू रहे हैं
बेरोज़गारी उग रही है
रक्त-बीज की तरह
दिन दूनी-रात चौगुनी
तब इन का ही व्यापार
दे सकता है
बेरोज़गारों को शरण
डरिए मत
पूँजी निवेश की भी ज़रूरत नहीं
नहीं भरना है, इनकम टैक्स भी
छापा पड़ने की तो
सपने में भी मत सोचिये
तोल-मोल में
कुछ भी बोलिए

---

* *सी-368, तलवंडी कोटा (राजस्थान)*

सब चलेगा
अन्तराष्ट्रीय मंडी में
बड़ी मांग है इन की
गिरवी रखने पर भी
होगी बढ़ोतरी
चक्रवृद्धि दर से
कापीराइट स्वयं सिद्ध है
व्यापारी के हक़ में
एक बार अंगद की तरह
पाँव जमने पर
सड़क छाप भी बन सकते हैं
महलों के मालिक
रातों-रात
जो भी इन अथाह में कूदा
डूबा ही डूबा
और
रम ही गया
इस सागर के तल में
मेरी मानो तो
बुरा भी नहीं
व्यापार शब्दों का

ooo

सावन

❑ कुलदीप कुमार 'किप्पी'

अबके सावन ऐसा आए
चहूं ओर जल थल हो जाए
नहीं प्यासा रहे पपीहा
मेंढक नाचे कोयल गाए
अबके सावन ऐसा आए

उमसों से राहत मिल जाए
सहमी कली-कली खिल जाए
बगिया पुनः मंद मुस्काए
अबके सावन ऐसा आए

वर्षा बनके मोती उतरे
जर्रा-जर्रा धरा का निखरे
आभा पर यौवन आ जाए
अबके सावन ऐसा आए

नभगन में जब बिजली चमके
गर्म धरा का दम-दम दमके
पवन चले सीना फैलाए
अबके सावन ऐसा आए

वर्षा के कुछ बाद पलों के
दादुर मछली दूर तलों के
इक दूजे को छू न पाए
अबके सावन ऐसा आए
चहूं और जल थल हो जाए

ooo

* गाँव होड़ कैंप डाकखाना हरिपुर मोड़ तहसील हीरानगर जिला कठूआ पिन 184148 दूरभाष 9419274987

लघुकथा

ताली योग

❑ जसबीर चावला

पहले वह स्टेडियम की दूसरी या तीसरी सीढ़ी पर बैठता है। सूर्य अभी अस्ताचल को जाने की तैयारी कर रहा होता है ''चावला जी'' वह अपनी दोनों बाहें ऊपर उठाकर आर्शीवादी मुद्रा में बेटे के दोस्त को सैर करता देख पुकारता है

''सतश्री अकाल जी!'' जवाबी हाक[1] को बड़ी प्रसन्नता से कबूल करते लकड़ी के फट्टों पर बैठा वह करीब-करीब उछल-सा जाता है-''उसनूँ कवो, बुड्ढा होर किन्ने दिन रोटियां थप्पेगा?''

बहू के हाथों की रोटियाँ खाने की उसकी साध जितनी बार प्रचंड हुई प्राध्यापक बेटा कहीं लंबी यात्रा पर निकल जाता! पता नहीं, कब किसे दिल दे बैठा है कि वहाँ से वापिस ही नहीं आता। इस तरह मुफ्त मिले दिल को और कितना घिसेगा? पर नहीं, बेटा सतपाल अगर गिरह डाले बैठा है तो बाप भी मोटे-मोटे चश्मों को पश्चिमी पंजाब की धोती से साफ कर नीचे घास पर आ बैठता है। तब तक आस-पास के दो-चार और बुजुर्ग साथ हो लेते हैं। उनमें आकर लाल गोटी-सा सज जाता है बूढ़ा बालक। कद-काठी चेहरे-मोहरे से बिना रोंये का बच्चा और बातों से बुजुर्ग। शुरू करता है शेरां वाली माता की कहानी से और खत्म करता है रावण के मायावी संतो पर जो लाल लंगूर की लंका-यात्रा में रोड़े बिछाते हैं।

चमगादड़ें जब खेलने के लिये मैदान के ऊपरी आकाश में घुसती हैं तब वेला होता है सतपाल के बाबूजी के हँसी-योग का। मैदान के बीचों-बीच गोल घेरे में हंसी का रहंट घूमता है-''हें क् .....हा हा..... हा हाऽऽऽ!''

हें क बोले तो बांहों को ऊपर हवा में ले जा खड़ा करना, काफी मशक्कत का काम होता है उनके लिये, जैसे खड़े गड्डे को बदल पूरे दम से खींचते कारंवा हो! पर उसके बाद तो हंसी के फव्वारों में डूब जाता है गम। चाहे दस मिनट ही सही उनकी यह चिंता मिट जाती है कि जब से पाकिस्तान बना, तब से औरत झांकी नहीं। घर-बूहा[2] उनके हाथों में पलता

---

(1) हाक (पंजाबी शब्द) आवाज़/पुकार

(2) बूहा (पंजाबी शब्द) दरवाज़ा

** 123/1 सेक्टर-155 चंडीगढ़-160055*

बड़ा होता रहा। नौकरियां तरक्कियां करता बेटा सतपाल अब बड़े घर में बड़े सोफा भी ले आया है।

हंसी योग का अंत होता है ताली योग पर-झूलती दोनों बाहें हवा में लहरा हथेलियां टकराती हैं-''टाक् टाट्''..... जैसे तंदूर मिस्त्री रोटियां थापने से पहले बदन गर्माता है। हथेली पर दूसरी हथेली पीट आवाज़ निकालता है!

सतपाल के बाबूजी घर लौट पड़ते हैं रात के लिये रोटियां पकाने।

ooo

आरोपित

❑ वीणा सिद्धेश

चन्द्रमा की किरणों से
जलने लगा है तुम्हारा जिस्म
ऐसा आरोप लगाने से पहले
कभी पूछा है तुमने उस चंद्रमा से
कि-
क्या संभव है यह
कि-
बर्फ पिघलना छोड़ दे
हवा बहना छोड़ दे.....!!
इसके पहले कि
अंधेरी रात में/चांद
अपनी चांदनी बिखेरना छोड़ दे.....!!
अपनी भूलों को
हमारी डायरी में लिखने से पहले
अपने भीतर तो झांक लिए होते
कि/कहीं तुम
आग तो नहीं बन गए हो
जिसकी तपिश में/खुद झुलसने लगे हो
और चंद्रमा को कलंकित करने लगे हो.....!

ooo

** अवसर प्रकाशन, पोस्ट बाक्स नं० 205, करबिजहिया पटना-800001 (बिहार)*

खून का रिश्ता

❑ राधेश्याम 'भारतीय'

आज वह दुर्घटनाग्रस्त अपने उस भाई से मिलने आया था। जिससे कभी ज़मीन के एक टुकड़े पर झगड़ा हुआ था। झगड़ा यहाँ तक बढ़ा था कि छोटे ने बड़े से हमेशा के लिए नाता तोड़ लिया था। वह भतीजी की शादी में भी उसे आशिर्वाद देने उसकी चौखट तक न आया। बस, उसके बाद तो वे एक-दूसरे के लिए अनजाने-से हो गए थे।

वह घर के बाहर खड़ा था। दरवाज़ा बंद था; पर, फिर भी घर खुलता चला गया। इसी घर से इसी भाई ने उसे पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़े होने लायक बनाया था।

..... पर, यह तो उसका फर्ज था..... उसने अपनी ही बात को काटा..... नहीं, वैसे भी अब ऐसा सोचने का वक्त नहीं है। बस, अब तो एक पल के लिए उससे मिलूँगा; हालचाल जान उन्हीं कदमों से वापिस लौट आऊँगा।

वह अन्दर गया और हालचाल पूछ वापिस लौट आया। उसका पत्थर दिल पत्थर ही रहा।

पर, ये क्या..उसने जैसे ही चौखट पर कदम रखा वह तुरन्त वापिस मुड़ा और जाकर भाई के कदमों में गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा मानो इतने वर्षों से जमे विषाद को आंसुओं के रूप में बहाना चाहता हो।

बड़े भाई की आँखों से भी अश्रुधारा थामे न थम रही थी।

ooo

दूरी

घर में देवरानी-जेठानी की कलह यहाँ तक बढ़ी कि न चाहते हुए भी बड़े भाई को छोटे भाई के लिए अलग मकान खरीदना पड़ा।

माँ-बाप की मृत्यु के बाद छोटे के प्रति उस पर और अधिक दायित्व बढ़ गया था।

''जेठानी ने पति से पूछा, ''कहाँ लिया मकान?''

''बहुत दूर है...उसका...मकान...।'' इतना कहते हुए। उसकी आवाज़ भर्रा गई और आगे वह कुछ न कह सका।

अगले दिन उसकी पत्नी ने जाने कैसे पता लगा लिया उस खरीदे गए मकान का। और पति के घर आते ही उस पर बरसती हुई बोली, ''ये तीन गली छोड़कर ही खरीद दिया मकान.....तुम तो कहते थे कि बहुत दूर है.....हाँ.....हाँ हमारी ही छाती पे दलवानी थी मूंग.....।''

भई चुप था.....उसे तो यह दूरी भी मीलों जैसी लगती थी।

ooo

---

* *नसीब विहार कॉलोनी घरौंडा करनाल-132114 मोबाईल :-93153-82236*

सपना

❑ सुनीता भड़वाल

घर के आसपास घूम-घूम कर बेबस-सी मेरी आत्मा बुरी तरह से थककर चूर-चूर हो चुकी है। मुझे मरे हुए आज पूरे पच्चीस दिन बीत चुके हैं। मेरी देह रूपी मिट्टी को अग्नि के सुर्पद कर मेरे घरवाले मेरा शोक मनाकर तथा रो-रो कर अब बेहाली से तनिक उभर चुके हैं उनकी आंखों से बहती अश्रु रूपी गंगा-यमुना की धारायें सूख चुकी हैं और वह मेरे बिना दुनिया में सहज होकर जीने का भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं।

त्योहार के अवसर पर रस्मानुसार एक बार फिर सफेद दुपट्टे लिए औरतों की टोलियां हमारे घर की ओर आ रही हैं। अफसोस जताने के बहाने या हमारे घर की लाबी (Lobby) के कोने में बैठकर दबी आवाज़ में बातें करने, कैसे मरी शामो ? जिस रात उसकी मृत्यु हुई, उसी शाम खेतों से आती देखी थी बिल्कुल ठीक थी। राम जाने कुछ खा लिया या फिर पति ने कोई ऐसा आघात पहुंचाया जिसे वह बेचारी सहन ना कर पाई और चल बसी। अब पता चलेगा पति को कि किस तरह निभाया जाता है घर-गृहस्थी का सारा बोझ, जो उस बेचारी के कन्धों पर था। इन जालिमों ने उसकी रति-भर भी कद्र ना की। यह सब वार्तालाप सुन मेरी आत्मा गुस्से से थर-थर कांप रही है। क्यों यह औरतें मेरे परिवार के लिए भली-बुरी बातें कह रही हैं? कौन होती हैं जो मेरी राख छान-छान कर, जजो की भांति जिरह कर, मेरी मौत का कारण ढूंढ रही हैं। इनका मेरे घर पंचायत लगाने से क्या अभिप्राय है?

ओह् मां! मेरा सोनू गिर पड़ा। कैसे गोद में बिठाऊँ सारा घुटना छिल गया है माँ के बिना बच्चा तड़प रहा है। मेरी आत्मा मानो चीख-चीख कर अपनी बेवसी पर रो रही है। मैंने कभी यूं अपने सोनू को अकेला नहीं छोड़ा था, हमेशा माँ के आंचल तले बड़े प्यार से पाला था, एक नन्हें कोमल पौधे की तरह जिसे हमेशा बचाया था सर्दी-गर्मी, तेज हवाओं से अब इस तरह दर-ब-दर ठोकरें खाते देखना मेरे बस में नहीं। 17 वर्षीय बेटी रानी अभी मां की इन जिम्मेदारियों को निभाने में दक्ष नहीं और यह (पति) भी तो रोज़ी-रोटी कमाने का सरिस्ता करेंगे या फिर बच्चे तथा घर-परिवार सम्भालेंगे। मैं कुछ नहीं कर सकती, यह सब देख और तो और दो आंसू भी नहीं बहा सकती अपनी बेवसी पर, क्योंकि मैं एक आत्मा हूं केवल एक परछाई मात्र जो बिन पानी की मछली के भांति केवल तड़प सकती है।

** 72/73 सैनिक कालोनी जम्मू*

ललित निबंध

चटनी के बहाने

❑ योगिता यादव

पति-पत्नी दोनों कामकाजी होने की बजह से सप्ताह के छह दिन हम भोजन नहीं कर पाते। भूखे नहीं रहते, बल्कि छह दिन के तीनों वक्त बस जैसे-तैसे खाना ठूंस लिया करते हैं। थाल सजाने की नौबत सप्ताह के आखिरी दिन यानी रविवार को ही आती है। सो उस दिन हमारा सारा ठाठ-बाट उस थाल में ही नज़र आता है। अचार, पापड़ और चटनियां हम दोनों के ही प्रिय स्वाद हैं। मैक और डोमिनोस जैसे रेस्टोरेंट्स की चलताऊ भाषा में इन्हें एक्स्ट्रा टोट्स कहते हैं। जिसका चार्ज बिल के सब टोटल में अंकित करने का चलन है।

ये स्वाद यूं ही नहीं हैं। इनके पीछे परंपरा है स्वादिष्ट और पौष्टिक खानपान की । साथ ही आदत है प्राकृतिक चीजों के अनूठे इस्तेमाल की। उन्हें बिना डिब्बा बंद किए। परंपरा पसंद होने का ही सुफल है कि मुझे इन्हें बनाने की पाक कला कहीं से सीखनी नहीं पड़ी। मां बनाती गई और हम खाते गए। गृहस्थी में पांव रखने के बाद अपनी रसोई संभालते हुए मैंने जान लिया कि मैं भी इन्हें बनाना सीख चुकी हूँ। खैर पापड़ और अचार, सब्जियों और दालों के सुस्वाद संरक्षण की कला है जबकि चटनी प्रतीक है ताज़ा कुशल स्वाद की। रविवारीय भोजन के थाल में पुदीने की हरी और तीखी चटनी देख मेरे बेटे ने सवाल किया कि यह क्या है? मेरा बेटा अभी सवाल पूछने की उम्र में है। ढंग से स्कूल जाना भी अभी उसने शुरू नहीं किया है। जाहिर है चौके के सभी स्वाद चखने में अभी उसे वक़्त लगेगा। उसके सवाल मुझे अच्छे लगते हैं। पर इस बार उसने ऐसा सवाल कर दिया था जो हमारी बड़ी होती पीढ़ी अगर इसी तरह बड़ी होती रही तो शायद आज से दस-बीस साल बाद पूछेगी। जिन्हें इटेलियन स्वाद मालूम हैं, मंचूरियन मालूम है और चाइनीज तो जैसे उनका फेवरिट है। पर पारंपरिक भारतीय खानपान पर उनकी डिक्शनरी में बहुत थोड़े से ही पेज हैं। वे मैगी और टॉप्स के टोमेटो कैचप के अलावा किसी और चटनी का स्वाद जानते ही नही। ऐसा नहीं है कि उनके अभिभावकों के पास धन-धान्य की कोई कमी है, बल्कि नहीं है तो वह परंपरा जहां ताजा और घर के पके खाने में अन्नपूर्णा का वास होता है।

अगर चाहते हैं कि अगली पीढ़ी को पुदीने की चटनी का स्वाद पता हो तो बचाकर रखनी होगी पुदीने की ताजगी। अत्याधुनिक चिमनियों से लैस 22वीं सदी मोड्यूलर किचन में भी होनी चाहिए कूंडी-डंडे की मौजूदगी। और सबसे ज़रूरी गृह स्वामिनी को सहेज कर रखना होगा कूंडी में पुदीने की चटनी कूटने का कौशल।

ooo

कहानी

आंच

❑ महाराज कृष्ण संतोषी

जनवरी का एक दिन।

सचमुच अब गिरती हुई बर्फ से डर लग रहा था और यदि इसी गति से बर्फ गिरती रही तो क्या पता अगली सुबह हम देख भी पाएंगे? हमारी बस जहाँ रुकी हुई थी, वहाँ से जवाहर टनल चार-पाँच किलोमीटर ही दूर थी। बर्फ के कारण वाहन सड़क के दोनों तरफ फंस गए थे। अगले दो-तीन रोज़ में रास्ता खुलने की संभावना कतई नज़र नहीं आ रही थी।

''हमें घर से नहीं चलना चाहिए था...'' मेरी बगल वाली सीट पर बैठा यात्री अपने साथी से कह रहा था।

''हां लेकिन सुबह तो सिर्फ थोड़ी-सी बारिश ही हो रही थी'' वह बोला।

''कश्मीर के आसमान का क्या भरोसा.....''

''सचमुच! बहुत फरेबी आसमान है.....'' मैं यह सुनकर हंसा।

''तुम क्यों हंसे, जनाब!''

यात्री ने मुझसे पूछा।

''यूं ही।'' मैंने जवाब दिया।

''कुछ तो बात है पंडित जी।''

मुझे उसके 'पंडित जी' सम्बोधन को सुनकर थोड़ा डर लगा। लिबास और दाढ़ी से तो मैं मुसलमान जैसा ही दिखता हूँ। फिर भी उसने मुझे पहचान लिया। शायद बात करने के मेरे लहज़े से पर अभी तक तो मैंने उससे कोई बात भी नहीं की थी। इस वक़्त जहाँ हम थे वह वेरीनाग के पास-पास का क्षेत्र था। वही वेरीनाग जिसकी सुंदरता पर मुग्ध होकर मुगल सम्राट जहाँगीर ने मरने की इच्छा व्यक्त की थी। वैसे सच बात बताऊं पूरी मुगल सल्तनत में मुझे दो ही सम्राट प्रिय लगते हैं एक बाबर और दूसरा जहाँगीर। बाबरनामा तो मेरा प्रिय ग्रंथ ही रहा है। अभी पिछले दिनों जब मैंने बाबर पर रूसी उपन्यास पढ़ा तो मैं और बाबरपरस्त हुआ। जहाँगीर की रूमानियत का शुरू से ही मैं कायल रहा हूँ।

** 113-ए/4 आनन्द नगर, बोह्ड़ी (तालाब तिल्लो) जम्मू तवी - 180002, फोन 0191-2505033 मो. 9419020190*

यह कहानी 16 मई को के. एल. सहगल सभागार में आयोजित सर्वभाषीय कहानी-गोष्ठी में पढ़ी गई है।

''पंडित जी! बोलोगे नहीं कि तुम क्यों हंसे।'' अजीब मुसीबत में फंस गया। वैसे देखने में वह व्यक्ति शरीफ लग रहा था। चेहरे पर हल्की-सी काली दाढ़ी थी जो उसकी आस्था का प्रतीक चिह्न-सा दिख रही थी। व्यक्तित्व में किसी भी तरह की कठोरता का आभास नहीं झलकता था.....

बाहर तिरछी बर्फ गिर रही थी। ठंड भी बढ़ने लगी थी। आज की रात बस में ही काटनी पड़ेगी। अब दिन भी बीत चला था और अंधेरा धीरे-धीरे पसरने लगा था।

''सिगरेट पियोगे, पंडित जी'' सहयात्री ने पूछा।

''नहीं? मैं सिगरेट नहीं पीता''

''फिर सेब ही खाओ''

उसने अपने बैग से दो सेब निकाले और मुझे दिए। अब मैं इंकार नहीं कर सकता था।

सड़क पर कुछ फौजी बूटों के बर्फ पर चलने की आवाज़ें आ रहीं थीं। वे चारों तरफ रोशनी फेंक रहे थे ओर साथ ही ये निर्देश भी दिए जा रहे थे कि सोना मत। पिछले साल ऐसी ही बर्फ में कई वाहन दब गए थे।

मैंने घड़ी देखी। सात बज चुके थे।

''या खुदा! हमें इस बर्फ के कहर से बचा'' मेरे आगे बैठे यात्री ने दुआ में हाथ जोड़े।

''तुम भी अपने भगवान से कुछ मांगो ना पंडित जी'' यह मेरी बगल वाली सीट का यात्री बोल रहा था। मैंने अपनी आँखें बंद की और सचमुच कुछ बुदबुदाया।

अंधेरे में बर्फ गिरती जा रही थी। मैंने खिड़की का कांच थोड़ा सरका कर अपना दायां हाथ बाहर किया। कुछ ही पलों में त्वचा सफेद हो गई। मतलब साफ ही था। बर्फ अभी थमने वाली नहीं थी। कहीं हमारी आखिरी रात तो नहीं। बर्फ दिखने में हल्की मुलायम भले ही लगे पर जम जाए तो बड़े-बड़े योद्धा घुटने टेक दें।

पुराने दिनों में लोग इस पहाड़ी रास्ते से पैदल ही सफर किया करते थे। तब मोटर गाड़ियों के लिए रास्ता नहीं बना था। उन दिनों रास्ते में कितनी मौतें होती थीं। बर्फ में एक अजीब सम्मोहन होता है जो आदमी को अपनी ओर खींचता रहता है। इस सम्मोहन में लोग फंस जाते और जान गंवा बैठते। मैंने अपने पिता से ऐसी कई बर्फ मौतों के किस्से सुने हैं। वे खुद कई बार ऐसी यात्राओं से मौत को चकमा देकर लौटे हैं। मैंने पिताजी से यह भी सुना है कि पीरपंजाल के कौवे आनन-फानन में लाश को चट कर जाते थे। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सब पीरपंजाल के कौवों से डरते थे।

बाहर फिर कुछ रोशनियां दिखाई दीं। पर इस बार वे सुरक्षा कर्मियों की रोशनियों जैसी नहीं थीं। दूर से ऐसे लग रहा था जैसे कुछ लोग लालटेन जैसा कुछ लिए हमारी तरफ बढ़ते

ही आ रहें हैं और हमें यह आभास हो रहा था, शायद बर्फ हटाने वाले मज़दूर काम के लिए बुलाए जा रहे हों। कुछेक यात्रियों ने अपनी खिड़कियों के कांच सरका दिए। बर्फ बदस्तूर गिर रही थी। रोशनियां पास आती गई। लोग जाने-पहचाने से दिखने लगे। वे इस बर्फ में वाहनों में फंसे लोगों की मदद के लिए आए थे। हम ने सुना, वे कह रहे थे.....

'हम पास के गांव से आए हैं। हमारे साथ चलिए। हमने आपके खाने और ठहरने का इंतजाम कर लिया है। रास्ता न जाने कितने दिन बंद रहे। मस्जिद खुदा का घर है। वहां सबके लिए जगह है। कोई भूखा न रहे, ठंड के कारण अपनी जान न दे! हमने सब इंतजाम कर लिया है । हमारे साथ चलिए वरना खुदा हमें कभी माफ नहीं करेगा।

गांव ज़्यादा दूर नहीं था। हमारी बस से मुश्किल आधा किलोमीटर। मैं अपने सहयात्री के साथ चल रहा था। मुझे चलते हुए 1990 की वह भयानक रात याद आ रही थी। 19 जनवरी की वह रात जब खुदा के ऐसे ही घरों से लाऊडस्पीकर गरज रहे थे और हमारे घरों की सांकलें हिल रहीं थीं। सब कुछ आँखों के सामने दृश्यमान हो रहा था।

स्मृतियाँ भी अजीब होती हैं! जब आदमी इनसे मुक्ति चाहने लगता है तो ये चिपकी रहती हैं। 1990 में जो कुछ हमारे साथ बीता, वह हमारा अतीत है। इतिहास का एक पन्ना। ऐसे कितने ही पन्नों से भरा रहता है इतिहास। मैं मानता हूँ इतिहास पढ़ना बहुत ज़रूरी है पर उसे याद रखना हिंसा है। इतिहास बोध का अर्थ यह तो नहीं कि हम प्रतिशोध का, हिंसा का नया इतिहास लिखें।

हम जब मस्जिद पहुँचे तो वहां पहले से ही कुछ लोग जमा थे। हमारे वहाँ पहुँचते ही उन्होंने हमें कम्बल दिए। गर्मा-गर्म कांगड़ियां दीं। हमने कहवा पिया। कुलचे खाए। कुछ महिलाएं भी दिखीं। खाने-पीने की चीजों का सब इंतज़ाम वे ही कर रहीं थीं। हमने भरपूर खाना खाया। प्याज़ और आलू के मेल में गज़ब का स्वाद होता है। वह भी जिस तरह कश्मीरी मुसलमान बनाते हैं।

रात के दस बज चुके थे। अब मस्जिद में कुछेक गांव वाले ही रह गए थे। शेष अपने-अपने घर जा चुके थे। बाहर का मौसम भले ही ठंडा हो लेकिन मस्जिद के भीतर इंसानी जज़्बों की गर्मी फैल चुकी थी। फिर सकून की नींद किसे नहीं आती। सुबह जब आंख खुली तो बर्फ थम चुकी थी। धरती का रंग श्वेत हो गया था। पेड़ों पर बर्फ के फूल खिल गए थे। आसमान शांत था। हवा में एक उजली सुबह की धूप का वादा दिख रहा था। नमाज़ी एक-एक करके मस्जिद में आने लगे थे।

"पंडित जी! कैसे कटी रात!" मेरा सहयात्री पूछ रहा था।

"बहुत उम्दा..." मैने जवाब दिया।

"सपने में कोई मुजाहिद तो नहीं आया।"

मैं चुप रहा। थोड़ा हंसा। मुझे पूरा भरोसा था कि इस बार वह नहीं पूछेगा- ''पंडित जी! तुम क्यों हंसे...!''

पर काश मैं उसे रात का सपना सुना पाता। कैसा अनोखा सपना था। वह मीलों बर्फ में पैदल चलकर मेरे पास आया था। उसने मेरे कंधे पर अपना हाथ रखा। उसके स्पर्श से मेरी रुह ताज़ा हो गई।

''तुम कौन हो अजनबी?'' मैंने पूछा। वह ठिठक गया। बोलो - ''मुझे नहीं जानते। मैं रसूलमीर हूँ...''

''शायर रसूलमीर।'' मेरे मुँह से अनायास निकला।

''हां शायर रसूलमीर!'' मैं उसे देखता ही रह गया। कैसे नहीं देखता। हुस्न और मोहब्बत का शायर मेरे सामने खड़ा था।

''सुना है मेरी कोंगमाल लू से मर गई है।'' उसका स्वर उदास था।

''नहीं! उसे सांप ने काटा''

''कैसे!''

''वह सांप उसके तकिये के नीचे छिप गया था।''

''क्या उस सांप को किसी ने नहीं मारा?''

प्रत्युत्तर में एक दीर्घ चुप्पी।

रसूलमीर गहरी सोच में पड़ गए। सोचते-सोचते वह रोने भी लगे-

''कोंगमाल मेरी मोहब्बत थी। मेरी रूह का आईना थी। ऐ मेरे नग्में गाने वाले लोगो! क्या तुम्हारा फर्ज़ नहीं था कि मेरी कोंगमाल को बचाते। उसके परिवार को हिजरत करने से रोकते।'' रसूलमीर रोता ही रहा मेरे सपने में। वह शर्मसार दिख रहा था जैसे उसके ही कारण कोंगमाल के परिवार ने हिजरत की हो। अद्भुत सपना था वह...

जम्मू पहुंचकर मैं सबको सुनाऊंगा अपना यह सपना...

''पंडित जी! क्या तुम्हें हमारे बीच कोई डर लगा?'' सहयात्री पूछ रहा था।

''नहीं!'' मैंने अपना डर छिपाते हुए कहा।

इस बार मेरा सहयात्री हंसा और कहने लगा।

''तुम झूठ बोल रहे हो पंडित जी'' और मैं चुप रहा क्योंकि मेरी चुप्पी में ही छिपा था मेरा सच।

ooo

उस रात की सुबह

❑ सुषमा जगमोहन

उसने उस दरवाज़े के कुंडे को कस कर पकड़ रखा था। उसे लग रहा था कि इस दरवाज़े के कुंडे में ही इस समय भगवान हैं। वह जब तक इस कुंडे को पकड़े रहेगी, तब तक ही उसमें बचे रहने की शक्ति रहेगी। नहीं तो यह नर पिशाच आज उसे तबाह कर देगा।

मन-ही-मन वह भगवान से प्रार्थना कर रही थी, 'हे भगवान, मुझे शक्ति दो, इस पिशाच का सामना करने की।'

पूरी ताकत से वह चिल्ला भी रही थी, 'कोई है..... बचाओ मुझे।..... भगवान के लिए मेरी मदद करो।'

उसकी आवाज़ बाहर तक पहुंच रही थी या नहीं, उसे पता नहीं। या पता नहीं लोग सुन कर अनसुनी कर रहे हों। हर घर के आगे थोड़ी-सी लॉबी जैसी जगह छोड़ी गई थी। थोड़ा मुड़कर अगले घर का दरवाज़ा दिखाई देता था। कोई बाहर हो, तभी आवाज़ आसानी से सुनाई दे सकती है।

वह हंस रहा था। 'यह बड़ा शहर है। यहाँ कोई किसी के मामले में टांग नहीं अड़ाता। चिल्लाती रह, कोई नहीं आने वाला।'

पिशाच की कोशिश थी कि किसी तरह उसे वहां से छुड़ा कर भीतर ले जाए। और वह अपनी पूरी शक्ति से कुंडे को ही पकड़े हुए थी। दरवाजे को धकधका रही थी। उसके पास कोई और तरीका था भी नहीं।

वह थी नंदिता।

उस बड़े शहर में आए उसे कुछ ही महीने हुए थे। छोटे शहर की लड़की नौकरी करने पहली बार इस महानगर में आई थी।

मां-पापा को बड़ी चिंता थी कि उनकी बच्ची अकेली कैसे रहेगी एक महानगर में। पहले तो कॉलेज के अलावा कहीं भी अकेली नहीं गई। इस शहर में दूर का एक रिश्ता निकल आया। मामा जी के बड़े साले के साढू का बड़ा बेटा। मामा जी ने काफी तारीफ की थी

** बी-१६, नवभारत टाइम्स एपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फेज वन दिल्ली-११००९१ संपर्क : १८११४०६१२८*

उसकी। लड़का इंजीनियर है, एकदम सुलझा हुआ। बहुत मेहनत की है। छोटी-सी फैमिली है। मियां-बीवी-बच्चा। बेटा तीनेक साल का है। रिश्ता दूर का है तो क्या हुआ ? मियां-बीवी सिर-आंखों पर रखेंगे हमारी नंदिता को।

मामा जी के साले साहब पापा के साथ खुद आए थे उसे छोड़ने।

मम्मी-पापा का इरादा तो यही था कि इन भैया-भाभी की सुरक्षा की छांव में ही रहे। हर महीने पैसे देती रहे। उन पर बोझ न बने, बस।

मां अक्सर सलाह देती : पैसे न लें तो किसी-न-किसी बहाने घर का सामान ले जाया करो। कहीं और भी तो पैसे देकर ही रहेगी ना। यहां अपनों के बीच रहेगी।

कुछ दिन उसे वह छत सुरक्षित और प्यार भरी लगी थी।

भैया-भाभी की लव मैरिज थी। दोनों अपने इश्क के किस्से सुनाते रहते। लेकिन उसे लगता था उन किस्सों में प्यार कम, एक-दूसरे के प्रति खीज ज़्यादा थी।

भैया अक्सर कहने लगते, 'तुम्हारे इश्क में न पड़ता तो किसी सुंदरी से मेरी शादी हुई होती। एक-से-एक सुंदरियों के पिता लाइन लगाए दरवाज़े पर खड़े थे। दहेज भी मिलता, सुंदरी भी। एक का बाप तो मुझे विदेश भेज रहा था। मेरा ही साला भेजा फिर गया था।.....

कभी-कभी तो भाभी रुआंसी हो आतीं। कह देतीं, 'सुंदरी मिल रही थी तो मुझसे शादी क्यों की? उस समय तो मुझ से सुंदर कोई दिखाई ही नहीं देती थी। अब एक बच्चे की मां हो गई हूं तो.....

'कहा ना भेजा फिर गया था .....।'

और ऐसे संवाद अक्सर लड़ाई-झगड़े की शक्ल ले लेते। वह सहम जाती।

अक्सर ऐसा लगता जैसे दोनों का मोहभंग हो गया हो। लेकिन कुछ घंटे बाद ही फिर प्यार-सा दिखाई देने लगता।

खैर, यह उनके बीच की बात थी। उसे वह सुरक्षित छत अजीब लगने लगी थी। उसकी अलग बजह थी। भाभी उससे खिंची-खिंची रहने लगी थीं और भैया जी को आंखों में अपने लिए अजीब-सा आकर्षण पाने लगी?

भैया उसे कई बार ऑफिस में भी फोन कर लेते। अचानक शाम को कई बार उसके ऑफिस के बाहर मिल जाते, 'मैंने सोचा, तुम्हें साथ लेता चलूं।' लेकिन वह हैरान होती, 'आपका ऑफिस तो साउथ में है। उलटी दिशा?'

'ओह, आज उस तरफ आया था ना।' उनका इंस्टैंट जबाव होता। फिर कहते, 'चलो कहीं बैठ लेते हैं।..... किसी रेस्तरां में कुछ देर।'

वह मुश्किल से पीछा छुड़ाती। यह कह कर कि 'भाभी घर पर हम लोगों का इंतजार कर रहीं होंगी।'

'छोड़ो, क्या हर समय भाभी-भाभी लगाए रखती हो। क्या हमारे साथ बैठना अच्छा नहीं लगता?'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है? वो भाभी क्या सोचेंगी?'

'अरे, कह देंगे कुछ भी। तुम बताओ, तुम्हें मेरे साथ बैठना अच्छा लगता है या नहीं?'

क्या कहे वह। एक बार तो उनके साथ ऑफिस के करीब के ही एक रेस्तरां में बैठ कर कॉफी पी थी लेकिन अजीब-सा लगा उनके साथ बैठना। पता नहीं क्यों?

आगे से वह इंकार करने लगी।

कभी-कभी वह अजीब से मज़ाक भी करने लगे थे। सड़क चलती किसी लड़की को देख कर कमेंट कर देते। उसे लगता, उसे ही कह रहे हैं। इसीलिए उसे लगने लगा कि इस सुरक्षित छत से उसे बाहर निकल जाना ही चाहिए।

दो कमरों के इस फ्लैट में वह वैसे भी खुद को मिस फिट पा रही थी। रात को ड्रांइग रूम में अपना बिस्तर बिछा लेती। उनका बेटा अर्णव भी उसी के साथ सोने लगा था।

उसे अजीब लगता था भाभी का भी व्यवहार। उनके बेटे को साथ लेकर सोती हूं। शाम को घर में खाना बनाती हूं। बच्चे के लिए, और इनके लिए भी कितना सारा सामान लेकर हर रोज आती हूं। फिर भी ये हर समय मुंह फुलाए रहती हैं। इससे तो कहीं पेइंग गेस्ट रहती तो आराम भी रहता और सस्ता भी पड़ता। और वह सब व्यवहार न देखना पड़ता।

वह मकान तलाशने लगी थी। सोचती, कुछ भी बहाना कर दूंगी। यहां से जाना ही बेहतर है।

उन्हीं दिनों अचानक एक रात उसे लगा, वह सपना देख रही है। कोई राक्षस उसकी तरफ बढ़ा चला आ रहा है। उसके चेहरे के एकदम ऊपर उसका चेहरा आ गया है। ऐसा लग रहा था कि वह उसे खा जाएगा। फिर लगने लगा कि उसका दम घुट जाएगा। उसका चेहरा भयानक, और भयानक होता जा रहा था। अचानक उसकी चीख निकल गई। लेकिन चीख सपने में नहीं, सचमुच निकली थी।

उसके पास सो रहा अर्णव जाग गया था। रोने लगा था। और अंधेरे में ही भाभी की आवाज़ आई, 'क्या हुआ' क्या हुआ नंदिता?'

लाइट खुली। भाभी की आवाज़ आई, 'आप यहां क्या कर रहे हैं?'

उसने भी देखा, भैया सामने खड़े थे।

'सपने में जिसे मैं राक्षस समझ रही थी, क्या भैया ही थे? बिल्कुल मुझ पर झुके हुए थे। क्या मतलब था उनका?' वह सोचने लगी।

भाभी उन्हीं से मुखातिब थी। उनकी आंखों में दुनिया-भर का संदेह, गुस्सा और भी पता नहीं क्या-क्या था। 'कुछ नहीं, मैं तो फ्रिज से पानी लेने आया था। लौटते हुए शायद नंदिता के पैर से मेरा पैर उलझ गया और मैं गिर पड़ा।' भैया सफाई दे रहे थे।

भाभी ने उनकी सफाई सुनते-सुनते ही नंदिता की ओर देखा। वह अभी तक कांप रही थी। अर्णव उसकी गोदी में सिमट आया था। उसने उसे अपनी बाहों में समेट लिया था। जैसे वही हो उसका सुरक्षा कवच। आंखों में अविश्वास लिए ही भाभी अपने कमरे में जाने लगीं।

वह धीरे से बोली, 'भाभी, क्या आप मेरे पास सो सकती हैं? मुझे बहुत डर लग रहा है।'

जवाब भैया ने दिया, 'डर काहे का पगली।' उनकी मुस्कान इस समय बिल्कुल स्नेहिल थी। 'गलती से मैं गिर पड़ा था। सॉरी, आई एम वेरी सॉरी। मेरी वजह से आधी रात को तुम्हारी नींद टूट गई।'

वह समझ नहीं पा रही थी किस पर विश्वास करे। भैया की इस बात पर या अभी कुछ पहले ही उसने नींद में जो महसूस किया था उस पर।

फिर सारी रात उसे नींद नहीं आई। अर्णव को गोदी में लिए हुए सिकुड़ी हुई रात भर यूं ही गठरी बनी बैठी रही। लेकिन सुबह होने तक वह तय कर चुकी थी कि इस घर में अब उसकी आखिरी रात है। आखिर यह शहर इतना अजनबी भी नहीं रह गया है और इतना बुरा भी नहीं, जितना यह घर लग रहा है। दिन में वह कैसे भी, कहीं से भी, कोई न कोई कमरा खोज ही लेगी। कैसा भी क्यों न हो। इस घर में वह अब एक रात का भी भरोसा नहीं कर सकती।

ऑफिस में वह किसी से कुछ कह भी तो नहीं सकती थी। क्या कहती, मां-बाप ने जिसके सहारे इस अजनबी शहर में भेजा था, वही भक्षक नजर आ रहा है।

आखिर दस तरह के झूठ गढ़े कि अचानक ऐसी आफत क्या आ गई कि शाम तक वह घर छोड़ना ही है। और उसके ऑफिस का सबसे शरारती लड़का, जिसे वह एकदम नालायक समझती थी, उसके काम आया।

लंच में वह अपने घर के पास ही एक घर दिखाने ले गया। और पसंद-न-पसंद की सोचे बिना उसने पेशगी दे दी। शाम को वह भैया जी के लौटने से पहले सामान बांध चुकी

थी। उस नालायक लड़के के अलावा एक और साथी को भी उसने सामान लिवाने के बहाने साथ ले लिया था ताकि भैया कोई सीन न क्रिएट कर पाएं।

भाभी के चेहरे पर खुशी झलक रही थी। सबके लिए उन्होंने इतने प्यार से चाय बनाई। समोसे मंगाए। भैया जी कुछ कह ही नहीं पाए। लेकिन चेहरे पर मायूसी थी।

जब वह घर से बाहर निकली, उसे लगा था कितने दिन बाद आज़ाद हवा में सांस ले रही है। भाभी ने कहा था, 'नंदिता वीकेंड में आती रहना।' लेकिन वीकेंड में आने की बात तो छोड़ो, उसने कभी वहां फोन भी नहीं किया। वह उन सब को एक सपने की तरह भूल जाना चाहती थी।

अचानक मां का फोन आया था उस दिन। कहने लगीं, 'नंदी, क्या तू भैया के यहां नहीं जाती? पापा ने फोन किया था तो शिकायत कर रहे थे। कह रहे थे, बहुत आज़ाद ख्याल हो गई है। काफी दोस्ता-वोस्त बना लिए हैं। पापा नाराज हो रहे थे। बेटे अजनबी शहर है, कोई मुश्किल आई तो वही लोग काम आएंगे। कभी-कभार हो आया कर।'

अच्छा तो शिकायत कर दी गई। मां-बाप के कान इस तरह भरे गए हैं। लेकिन वह क्या कहती? सैकड़ों मील दूर बैठी थीं मां एक छोटे से शहर में। उनकी सांस रुक जाती असली बात सुन कर या फिर भरोसा भी करतीं न करतीं उसकी बात पर। पता नहीं। कह दे गलतफहमी हुई होगी।

बीच में भैया जी का फोन आया। कह रहे थे,' तुम्हें मेरे किसी व्यवहार से परेशानी हुई हो तो शर्मिंदा हूं। गलती से कुछ हुआ हो तो कह नहीं सकता।'

उसका मतलब क्या मानती वह? बहुत इसरार करने पर एक दिन शाम को एक घंटे के लिए मिलने चली गई।

उसे लगा इतना रिश्ता ही ठीक है। न मम्मी-पापा को शिकायत होगी। न इन लोगों को कुछ कहने का बहाना मिलेगा। अर्णव के लिए चॉकलेट ले जाओ। घंटा-आधा घंटा बैठो। भाभी से हाल-चाल पूछो और भैया के आते ही नमस्ते-शमस्ते करो और थोड़ी ही देर में फूट लो। 'पहुंचते-पहुंचते रात हो जाएगी,' यह कह कर।

उस दिन भी वह ऐसे ही एक-दो घंटे के लिए मिलने आई थी। चाय बना कर भाभी बोलीं, 'मैं जरा सब्जी लेकर आती हूं। तब तक तुम बैठो। खाना खाकर जाओगी। जब से गई हो ऐसे भी भागा-भागी में आती हो।' उसने कहा, मैं भी साथ चलती हूँ तो भैया बोले, 'तुम अभी तो आई हो, बैठो। कहां जाओगी। मानसी अभी आ जाएगी सब्जी लेकर।'

अर्णव को भी वह साथ लेती गई। उसके हाथ में चोट लगी थी। उसकी पट्टी करवानी थी।

पता नहीं क्यों, वह इंकार नहीं कर पाई थी। उसे लगा शाम के पांच-छह बजे भी ऐसा क्या खतरा हो सकता है।

भाभी के जाते ही भैया ने कहा, 'अंदर बैठ कर आराम से टीवी देखो ना।'

उसने भी सोचा, इनसे बात करने से बेहतर है टीवी देखा जाए। लेकिन भैया तो भीतर आते ही नए रूप में उसके सामने थे। उसे बांहों में भर लिया।

कहने लगे, 'नंदिता, मैं तुम्हारे बिना पागल हो जाऊंगा। उसने उन्हें एक कोने में धकिया दिया और बाहर की तरफ भागी। दरवाजा खोलने की कोशिश बेकार गई। वह ताला लगा कर ही भीतर गए थे।

वह कैद में थी और भैया अपना चोला पूरी तरह बदल चुके थे-एक पिशाच का चोला।

वह अब भी दरवाजे के कुंडे को कस कर पकड़े हुए थी।

अचानक उसे लगा, बाहर किसी औरत की आवाज़ आ रही है। उसने सोचा, हो सकता है सामने वाली पड़ोसन हो। शायद उसकी मदद करे, वह पूरी ताकत से चीखी, 'मुझे बचा लो भाभी।' उसे भी वह भाभी ही कहती थी। 'ताला बंद है। मैं यहां फंस गई हूं। पुलिस को फोन कर दो प्लीज़।'

उसने सोचा, अब बदनामी की चिंता करने से कोई फायदा नहीं।

लेकिन पीछे से पिशाच चीखा, 'अच्छा पुलिस बुलवाएगी।' वह दांत पीस रहा था। और कुंडी से उसका हाथ छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। 'पुलिस आने से पहले ही तुझे सही ना कर दिया तो।

'बहुत भागी फिरती थी मुझ से। यारों को साथ लेकर आई थी घर पर सामान लेने। मैं समझता नहीं हूं क्या? अब बुला उन्हें। मैं बुरा हूं ना। वो तेरे सगे हो गए। स्याली..... उनके साथ घूमती-फिरती है। आवारा कहीं की।' धप... धप... धप... वह उसकी परवाह न करके दरवाजा लगातार पीट रही थी। बाहर कुछ लोग इकट्ठे हो गए थे। उसे लग रहा था कि बाहर लोगों के इकट्ठे होने से पिशाच की हिम्मत जवाब देने लगी थी।

वह अपना गुबार निकाल रहा था, 'हरामजादी, अब तो मैं तुझे छोड़ूंगा नहीं। तूने बदनाम तो कर ही दिया है।'

अचानक दरवाजे को बाहर से कोई पीट रहा था। बाहर आवाज़ें भी बढ़ गईं थीं। एक आवाज़ आई, 'मानसी, ओ मानसी, तुम्हारे घर में वह लड़की चिल्ला रही है।' आवाज़ तो सामने वाली पड़ोसन की ही लग रही थी। भाभी आ गई है। उसकी सांस-में-सांस आई। कुंडे को और कस के पकड़ लिया।

फिर दरवाजा पीटने की आवाज़। फिर भाभी की आवाज़, 'आप दरवाजा खोलते हैं या.....?

पिशाच बिल्ली बनने लगा था। उसने चाबी निकाल ली थी। वह कुंडी को कस कर पकड़े-पकड़े ही एक ओर हो गई। और ताला खुल गया था।

भाभी के भीतर आते ही वह उनसे लिपट गई। उसे इस बात की कतई परवाह नहीं थी कि भाभी ने उसे कभी पसंद ही नहीं किया था। इस समय तो वही सहारा थीं। वह जार-जार रो रही थी। उसे देख कर अर्णव ने भी रोना शुरू कर दिया। उसकी चांकलेट वाली बुआ क्यों रो रही थीं, वो इस बात से परेशान था। वह बड़ों की तरह उसको दिलासा देते हुए उसकी पीठ सहलाने लगा था।

पता नहीं कब तक रोती रही।

भैया-नहीं, पिशाच भीतर वाले कमरे में चला गया था!

वह उठ खड़ी हुई जाने के लिए। पर्स उठाया और आंसू पोंछ कर कहा, 'भाभी.... अब चलती हूं।'

'तुम पुलिस को बुलाने को कह रही थीं ना। पुलिस को चाहो तो बुला लो। मैं तुम्हारा साथ दूंगी।'

'नहीं भाभी, मैं बात को बढ़ाना नहीं चाहती। मैं बस यहां से चली जाना चाहती हूं। भूल जाना चाहती हूं, इस हादसे को बुरे सपने की तरह।' उसके मुंह से निकला।

अचानक भाभी की आंखें भीग गई। कहने लगीं, 'आज रात यहीं रुक जाओ।'

वह भाभी की आंखों में देख रही थी। यह औरत, जो मेरे यहां रहने पर कभी खुश नहीं हुई। सोचती रही, मैं इसके हस्बैंड पर डोरे डाल रही हूं। यह औरत, जो मेरे यहां से जाने की खबर सुन कर कितनी खुश हुई थी। आज कह रही है, मैं यहां रुक जाऊं। कहने को बहुत कुछ कह सकती थी लेकिन कह नहीं पाई।

जुबान पर सिर्फ इतना ही आ पाया, 'भाभी, इस एक घंटे में जो नरक भोगा है, उसके बाद भी आप ऐसा कह रही हैं।'

उसे लगा, भाभी की आवाज़ और नम हो गई है। उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर बोली, 'नंदिता, क्या बताऊं इस हादसे ने मुझे कितना तोड़ दिया है। तुम पुलिस में भी जा सकती थीं। लेकिन ऐसा नहीं किया। इसके लिए शुक्रिया नहीं कहूंगी। बहुत छोटा शब्द है। इतना अहसान कर रही हो तो बस इतना और कर दो। रात-भर के लिए रुक जाओ। तुम अभी चली गई तो इज्जत तो मेरी ही नीलाम होगी। हर उंगली इस घर पर उठेगी। हर आवाज़

मुझे चीरेगी। हर हंसी मेरा ही तो मज़ाक उड़ाएगी। इसी लिए कहती हूं, तुम रुक जाओ, प्लीज़। .....सुबह चली जाना। भले ही फिर कभी मत आना। इसके बाद आने का कोई कारण भी नहीं बनता। मैं पड़ोसियों से कुछ भी कह दूंगी..... कुछ भी, तुम्हारी तबियत खराब थी..... गलती से ताला लग गया था....। कुछ भी। सैकड़ों झूठ बोले जा सकते हैं इस रात के सहारे। लेकिन मेरी इज्ज़त बच जाएगी.....'

भाभी अब तक रोने लगीं थीं। उसके कंधे पर उनकी सिसकियां सुनाई दे रहीं थीं।

फिर आवाज़ सुनाई दी, 'मेरा भरोसा करो, मेरे होते यह पिशाच तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता। इसका डर मन से निकाल दो। तुम सोचती होगी, मैंने तुम्हें कभी पसंद नहीं किया। ऐसा नहीं था। मैं उनकी आदत जानती थी। तुम्हारे सामने भी लड़कियों को देखकर किस तरह की हरकतें करते थे। तुमने देखा तो है..... इसलिए चाहती थी कि तुम यहां से चली जाओ। कुछ कह तो सकती नहीं थी। रिश्तेदारी का मामला था। पर ऐसा भी नहीं सोचा था। .....एक पल भी यहां रहने का मेरा मन नहीं है, लेकिन क्या करूं? पता नहीं अपने बारे में कोई फैसला ले पाऊं या नहीं ? उसके लिए भी साहस चाहिए.....। प्रेम विवाह किया था।..... मेरे किसी भी फैसले में कोई मेरा साथ देगा भी या नहीं।'

पता नहीं, वह कब तक बोलती रहतीं, अनायास ही उसके हाथ भाभी के कंधों पर चले गए। उसके आंसू सूख चुके थे।

वह भाभी के आंसू पोंछने लगी। साहस जुटाया। उनका चेहरा अपने हाथों में लिया और बोली, 'आपकी इज्ज़त पर कोई आंच नहीं आएगी।'

ooo

लावा

❑ संतोष श्रीवास्तव

कल से दीवारों का पेंट खुरचने में लगे थे कारीगर। उनकी शानदार कोठी बीते कल की कहानी बन चुकी थी। रह गया था तो बस वह कमरा जिसमें पिछले सैंतीस बरसों से वे अपनी हर उदासी, हर हंसी और हर पीड़ा को जी रही थी। शर्त यही थी फिल्म निर्माता से कि पूरी कोठी वे अपनी फिल्म की शूटिंग के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। बस नहीं, करेंगे तो इस कमरे को, जो हॉल की सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर बायीं ओर नितांत उनका है। यूनिट के तमाम सदस्यों में सबसे जिम्मेवार लगा था मलय माथुर।

''मैडम आप निश्चिंत रहिए। हम हाल की सीढ़ियां चढ़ेंगे ही नहीं। हमें तो अंग्रेज़ों के जमाने को शूट करना है। उसके लिए कोठी का निचला हिस्सा ही काफी है।'' वे आश्वस्त हुईं थीं। यह भी तय हो गया था कि उन्हें जिस रंग की जैसी दीवारें फिल्म की शूटिंग के लिए चाहिए पेंट कर लें लेकिन बाद में उसी रंग से पेंट करके देनी होगी जिस रंग की वे थीं।

कितनी जद्दोजहद के बाद तो वे शूटिंग करने देने के लिए तैयार हुईं थीं कि इस फिल्म की कहानी में हीरो की कोठी पहाड़ की ऊंचाई पर है मेन सड़क से कुछ ही फर्लांग की हरी-भरी ढलान को चढ़कर... कोठी के बरामदे से सामने सूर्योदय का नज़ारा दिखता है। हरे-भरे ऊंचे-ऊंचे दरख़्त हैं और पिछवाड़े बहता पहाड़ी नाला है जिसके दोनों किनारों की चढ़ान पर पीले जंगली फूल हर मौसम में खिले रहते हैं और यह सब इस कोठी में और कोठी के आसपास हैं। शूटिंग ज़्यादा-से-ज़्यादा तीन महीनों में निपट जाएगी। पूरी फिल्म थोड़ी शूट करनी है उन्हें यहां। हीरो की ज़िन्दगी के बस चंद साल ही।

वे जानती हैं, उनके लिए कोठी ईंट, पत्थर, गारा, सीमेंट से बनी निर्जीव वस्तु नहीं है बल्कि उनका पूरा जीवन है ये कोठी। शान्तनु के साथ तेईस वर्ष की उम्र में जब नई नवेली दुल्हन बनकर इस कोठी में प्रवेश किया था तब से लेकर अब तक... सैंतीस वर्षों के उनके लंबे सफर को शेयर किया है इस कोठी ने। कहीं कुछ भी नहीं बदला इसके रखरखाव और सजावट में। जैसा शान्तनु के समय था वैसा ही अब भी है। बस बदली है तो उनकी देह। जो उम्र के साठ वर्षों में बदल ही जाती है। उन्हें कभी अपनी देह से लगाव नहीं रहा, नहीं

*75/2 जॉय अपार्टमेंट जे.बी. नगर अंधेरी (पूर्व) मुम्बई-59 फोन- 0969041707

तो आसन, प्राणायाम से बदलने नहीं देती। उनके मन में तो उस हादसे के बाद बड़ा क्रूर एहसास जागा था, इस देह के लिये, लेकिन... और फिर शान्तनु के साथ हर बार पत्नी धर्म निभाते हुए अंदर कहीं वे बुरी तरह-टूट भी जातीं थीं। जिस क्षण शान्तनु असीम आनंद और संतुष्टि में भरे होते उनकी आंखों से एक लावा-सा फूट पड़ता जो उन्हें झुलसाता हुआ देह की शिराओं में धधकने लगता। वे तड़प उठतीं और खुद को शान्तनु की बांहों से छुड़ा बाथरूम में ठंडे पानी के शॉवर के नीचे आ खड़ी होतीं। स्वयं को लावा से छुड़ा पाने में उन्हें घंटा भर तो लग जाता। लौटती तब तक शान्तनु तृप्ति में आकंठ निमग्न गहरी नींद में सोये होते। वे भी लेट जातीं। नींद नहीं आती फिर भी। कभी वे उठकर बालकनी में पड़े झूले पर आ बैठतीं। सामने सड़क के उस पार लंबे घास के मैदान के बाद चिरौंजी और पलाश के दरख्त अंधेरे में डूबे होते। हालांकि घास का मैदान चूंकि गोल्फ खेलने के लिये उपयोग में लाया जाता था इसीलिए वहां सड़क से लगे लैंपपोस्ट थे। कोलतार जैसे काले जिन पर रोशनी का दूधिया हंडा चमकता रहता।

एक बेटा हुआ उनके। मां बनना चाहा नहीं था उन्होंने पर शान्तनु की इच्छा के आगे सर झुकाना पड़ा उन्हें। जब बेटा गर्भ में था हर पल वे बिखरी हैं। खुद को समेटना मुश्किल हो जाता। यह बिखराव देह और मन से पिघलते लावे में सना होता। जब वह खुद को समेटतीं तो लावा छूटता ही नहीं और-और चिपकता जाता, उसकी उंगलियों में, उसकी देह पर, देह के हर रंध्र को ढक देता लावा।

ये क्या... आंखें लाल हो रही हैं तुम्हारी, ब्लड प्रैशर भी हाई है। तुम्हें अपना ख्याल रखना होगा मनु, चैकअप, दवाइयां, ब्रीदिंग एक्सरसाइज नियम से, समझीं। कुछ किताबें ले आऊंगा तुम्हारे लिए। ये कबीर, वली और पाश को पढ़ना छोड़ो अभी। ये कवि दुख को और बढ़ाते हैं, कुछ हल्के-फुल्के कविता संग्रह ले आता हूं तुम्हारे लिए।

अब वह कैसे बताए कि दुख को बढ़ाने वाली कविताएं ही तो रास आती हैं उन्हें, वह पीड़ा इतनी अधिक बढ़ा लेना चाहती हैं कि खुद को भूल जाए... गर्भ में पलते इस शिशु को भूल जाएं। वैसे भी इसमें उसका हाथ कहां? यह सब तो प्रकृति खुद की रचती चलती है। जैसे प्रकृति ने कवि मन दिया उन्हें, दीवानगी की हद तक कविता को पोर-पोर में रचा बसा महसूस किया था उसने। वह उम्र सपनों की, मोहक उड़ानों की, भ्रमों की, छले जाने की थी और वह छतनार पीपल का दरख्त जिसकी चिकनी-चिकनी पत्तियों से झांकता चांद उनके छोटे से कमरे को उजास से भर देता और फुस-फुसाती आवाज़ उन्हें घेर लेती मनोरमा... मनोरमा...मनोरमा...मनोरमा...मनोरमा...

तब वे मीरा के पदों की किताब के खुले पन्नों पर माथा टेक देतीं, पीपल हवाओं से हहराता रहता। उस फुस-फुसाहट में दम था, मनोरमा शब्द कानों में पड़ते ही तन-मन झनझना जाता था। एक मीठी झुरझुरी में देह लरजती रहती, पलों, घंटों तक....

तब धुन थी पढ़ने की और संगीत की ... बाबू जी ने एक मास्टर घर में ही संगीत सिखाने के लिए बुला लिया था। अधेड़ उम्र के लेकिन आंखों से अंधे। हमेशा काला चश्मा उनकी आंखों पर चढ़ा रहता, पर उनके लिए मास्टर जी का अंधापन स्वीकार करना कठिन हो रहा था। वे हारमोनियम पर कोई गलत सुर पर उंगली रख देती तो मास्टर जी बरज देते, वे सकपका जातीं। उस सुर पर आधा-आधा घंटे रियाज कराते मास्टर जी...

उन्हें कबीर, मीरा, सूर के भजन सीखने थे। मास्टर जी कहते, पहले सरस्वती वंदना और देश-भक्ति के गीत सीखो। एक दिन किवाड़ की दरार से उसी फुस-फुसहाट सहित एक पर्ची आ गिरी कमरे में लिखा था... एरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय, गाकर सुनाओ। जाने क्या हुआ धुन-सी चढ़ गई। जब हारमोनियम लेकर बैठती वही गीत साधने लगती। पूरा हफ्ता लग गया। उस रात आसमान पर घनघोर बादल छाए थे। काले, धूसर, नारंगी आभा देते डरावने से। हवाएं भी तेज चल रहीं थीं पीपल की शाखें लहराते हुए भयभीत कर देने वाली आवाज़ में शोर कर रहीं थीं। पुराने ज़माने का किले जैसा विशाल घर... दो भागों में बंटा। लेकिन बंटवारे के लिए किसी नई दीवार का निर्माण नहीं किया गया था। बस एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने के लिए बने किवाड़ों को सांकले चढ़ा बड़े-बड़े ताले जड़ दिए गए थे। किवाड़ों के उस पार सॉय-सॉय डोलती हवा में उसकी हलकी-सी हलचल अलग महसूस कर रही थीं वे। किवाड़ से सटकर आ बैठीं और हरामोनियम बजाकर गाने लगी। एरी मैं तो प्रेम दीवानी...। किवाड़ों की रंध्र से उस पार की सांसें आहिस्ता-आहिस्ता गीत में घुलने लगीं। उस पार का कमरा, फर्श और दीवारें उन्हें अपने में समेटे ले रही थीं, मरमरी फर्श पर सुरों की लहरियां लरज-लरज जातीं.. बहुत देर बाद एक मीठा-सा शुक्रिया उस तक पहुंचा और वह झनझना गई सितार के तारों सरीखी...

ममता जिज्जी की शादी तय हो गई थी बदायूं में। संगीत के मास्टर जी अब नहीं आते थे। भातखंडे से संगीत विशारद और यूनिवर्सिटी से एम.ए. की डिग्री साथ-साथ मिल गई थी उन्हें। अब तो बाबू जी अम्मा से यह भी कहते सुने गए थे कि अच्छा लड़का मिल जाए तो ममता के संग-संग ही मनोरमा को भी निपटा दें। रात फिर वही पुकार ...मनोरमा...मनोरमा...मनोरमा...मनोरमा वह सहम-सी गई थी। सामने चेहरा होता तो होंठों पर हथेली रख देती, आहिस्ता... दुनिया को सुनाओगे क्या?''

जानें कैसे मन की बात वहां तक पहुंच गई। किवाड़ों पर उंगलियों की ठक-ठक... सुनों, मुझे किसी का डर नहीं... मुझे सिर्फ तुमसे मतलब है।''

और वह वहीं बैठी-बैठी उस पार की दीवारों में अनारकली बन धंसने लगी।

बदायूं से क्या तो बारात आई थी। ढेरों बाराती... जो दूल्हे के प्रगाढ़ मित्र थे वे जनवासे में दूल्हे के आसपास ही मंडराते। इधर से पूरी सखियों की टीम तमाम गालियों वाले गानों से लैस, डटी थी। उन्होंने धानी रंग का शरारा कुरता और घुंघरुओं वाली पाजेब पहनी

थी पैरों में। रात दो बजे तक जब तक शादी का मुहूर्त नहीं आ गया... जब तक दूल्हे की मंडप में जाने की घड़ी न आ गई वे ठुमक-ठुमक कर नाचतीं रहीं, गातीं रहीं और जैसे ही भीड़ मंडप की ओर पलटी तभी वह हादसा...

कैमरे ऑन हो गए थे। मुहूर्त शॉट होने के बाद का सीन शूट होने की तैयारी में था। मलय माथुर सीन की एक-एक बारीकी कलाकारों को समझाता इधर से उधर हो रहा था। एक लड़का दौड़-दौड़ कर सबको पानी पिला रहा था। शूटिंग देखने वे बालकनी में आ खड़ी हुईं। हॉल में कलाकारों का जमघट... कैमरे की तेज लाइट में आंखें चुंधिया गईं। रीटेक... दो-तीन बार होने के बाद शॉट ओ.के. हो गया। मलय माथुर ने हीरोइन को गले से लगा लिया। पूरी यूनिट खुशी में डूब गई। रंगवाला की फिल्म है बॉस, एक-एक सीन डूब कर करना होगा। उनकी पिछली फिल्म ने बॉक्स ऑफिस पर करोड़ों बटोरे हैं।

बिरयानी परोसकर सब बतिया रहे थे। बिरयानी और कोल्ड ड्रिंक की बोतलें... यह तो उन्हें बाद में पता चला कि कोल्ड ड्रिंक में व्हिस्की मिली हुई थी।

मलय माथुर ने आवाज दी, ''आईए मैडम, हमारे साथ बिरयानी खाइए।''

उन्होंने मना कर दिया, ''नहीं वे नॉनवेज नहीं खातीं। अलबत्ता सलाद, पापड़ और अचार की शीशी उन्होंने नौकर के हाथ भिजवा दी थी। सारे युवा लड़के-लड़कियां... कमाल का अभिनय। जैसे बॉर्न आर्टिस्ट हों... जोश और उमंग से भरे। अच्छा लग रहा था उन्हें। एक उनका समय था भावुकता भरा। युवा वर्ग नदी, पहाड़, आसमान, चांद-सितारों में खोया रहता था। रोमांटिक कवियों, शायरों की पंक्तियां आपस में सुनाकर, गुनगुनाकर रोमांस के नशे में डूबा रहता था। लेकिन आज का युवा वर्ग नितांत, अलग, एकदम प्रेक्टिकल। वे भी जोश से भर जातीं। यूनिट के आने से पहले ही वे अपने रोजमर्रा के कामों से निपट जातीं और बालकनी में आ बैठतीं। सोचती, कितनी अलग दुनिया है इनकी। कैमरा, डायलॉग, एक्शन, गीत, संगीत, हंसी, मुस्कुराहट, निश्छल, उन्मुक्त जैसे गगन में उड़ते पंछी। न खाने में ताम-झाम, न कोई दिखावा। काम काम... और बस काम। कुछ कर गुज़रने की चाह... आसमान को बांहों के इंची टेप से नाप लेने की चाह...।

और वे! लावे की परत पर ज़िंदगी जीती...

शादी से भी इंकार था उन्हें, ''नहीं करूंगी। मुझे नौकरी करना है, अपने पैरों पर खड़ा होना है। नहीं तो एम.ए. करने का फायदा क्या है?

''बचपना मत करो मनोरमा। इतना अच्छा लड़का मिला है। लाखों का बिजनेस है.. जिंदगी-भर ऐश करोगी।'' अम्मा ने उनकी ठोड़ी पकड़ प्यार से कहा था और फिर उनसे छोटी अपनी दो बेटियों को अवश भाव से निहारा था। चार-चार बेटियों की पुत्रहीन मां.. अम्मा की कातर निगाहों का सामना नहीं कर पाईं वे और मौन स्वीकृति दे अपने कमरे में आ किवाड़

से टिक गई। लेकिन किवाड़ों के उस पार सन्नाटा था और इस पार सन्नाटे में सर पटकती तेजी से उठी उनकी भावनाएं। भावनाओं का किर्च-किर्च हो फर्श पे बिखरना उन्होंने साफ महसूसा था।

बेटे के जन्म के साथ ही उन्हें बदल जाना चाहिए था। ममता से भर जाना चाहिए था पर वे तो पत्थर हो चुकी थीं उस हादसे के बाद। हां पत्थरों के नीचे लावा जरूर दबाए थीं जो जब तक सुलग उठता, सुलग उठतीं उनकी शिराएं... तप्त पिघलाता लावा... सैंतीस वर्षों से... सैंतीस क्यों बल्कि अड़तीस वर्षों से इस पिघलाते लावे में अपनी नर्म, मुलायम देह ले बही है वह... इसी देह को तो घसीटा था उसने।

ममता जिज्जी की शादी के दौरान जब दूल्हे को लिए भीड़ मंडप की ओर जा रही थी। किसी के मजबूत हाथों ने उसकी कलाई पकड़ कर घसीट लिया था उसे जनवासे से लगी एकांत कोठरी में। शक्कर के बोरों और घी के कनस्तरों से अटी थी कुठरिया... वहीं उन्हें पटक कर उनकी नर्म मुलायम देह को खरौंचे डाल रहे थे दो अजनबी हाथ... जनवासा एकदम सूना हो चुका था। उसने चीखना चाहा था ऐन तभी उनका दुपट्टा उनके मुंह में ठूंस दिया गया था और वे पिसती रहीं थीं। जैसे वक्त थम सा गया हो.... जो बीत जाने का नाम ही न ले रहा हो... उनकी पूरी देह गर्म लावे में धंसी जा रही हो। बड़ी देर बाद कुठरिया के बाहर आहट और उसके नाम की पुकार सुन कुठरिया का दरवाजा खुला और जनवासे से आती तेज रोशनी में वह घिनौना चेहरा अक्स हो गया उनकी पत्थर होती देह पर... जैसे खुरच-खुरच कर वक्त ने चिह्नित कर दिया हो वह चेहरा... अब वह कभी नहीं मिटेगा। पत्थर पे खुदे चिह्न मिटते कहां हैं? अपनी खरौंच लिए सदियों ओले, बरसात झेलते अमिट रहते हैं।

"मनोरमा जिज्जी, आप यहां क्या कर रही हो? उधर सब आपको ढूंढ रहे हैं। चलो, चलो जल्दी... दूल्हे के जूते हम लोगों ने छुपा दिए हैं।"

वे अपनी पत्थर देह छोटी बहन के संग घसीटती सी चलने लगी।

"क्या हुआ? गिर गई थी क्या आप? ये गले पर खरोंच कैसी?"

इसके पहले कि छोटी बहन इन खरौंचों में से किसी कहानी की ढूंढने की कोशिश करे उन्होंने दुपट्टे से अच्छी तरह गर्दन ढक ली, छाती में उठा आंसुओं का बवंडर वहीं घोंट डाला और दृढ़ता से बोलीं-कुछ नहीं हुआ मुझे... चलो जल्दी।"

ममता जिज्जी की बिदाई उसके मिट जाने की पहली सुबह हो गई थी। धारों-धार रोती रही थी वह जिज्जी से लिपट कर.. तमाम मौसियों, बुआओं से लिपट कर... जैसे उन्हीं की विदाई हो रही हो। अम्मा ने चौंक कर बांहों में सिमेट लिया था-क्या हुआ पगली? अरे आ जाएगी हफ्ते-भर में ममता।

लेकिन रोना है-कि थमता नहीं... एक तूफान उठा है मन में जिसने उसके सपनों, आकांक्षाओं की सारी कोंपलें नष्ट कर पेड़ ठूंठ कर दिए हैं। जिंदगी की राह में लुट गईं वह... यह लूट अब वह दुबारा नहीं कमा सकती, वापिस नहीं पा सकती... जैसे शरीर से एक अंग ही कट गया हो।

रात किवाड़ों की दरार से फुस-फुसाहट तैरती रही..मनोरमा...मनोरमा... जैसे किसी ने सहानुभूति का हाथ रख दिया हो पीठ पे... ''मनोरमा... मैं हूं न। रो-रो कर हल्कान हुई जा रही हो।''

और वह फूट-फूट कर रो पड़ी थी। उनके होंठ कांपे थे-अब तो मैं मिट गई... अब किसी के होने से न होने से क्या फर्क पड़ता है?

हफ्तों उसकी आंखें गुड़हल सी लाल रहीं... बात-बात पे आंसू छलक पड़ते। यूं किताब पढ़ते नींद से आंखें झपक जातीं और जब बिस्तर पर पहुंचती, नींद कोसों दूर छिटक जाती। वे अपना दर्द, बेचैनी, पीड़ा सब मन में जब्त किए जीने की आदत डाल रही थीं... सूखे, मुरझाए चेहरे की वजह सबने ममता से बिछुड़ना मानी और यह तय पाया कि जल्दी-से-जल्दी मनोरमा की शादी भी कर दी जाए। घर में शादी की दबी-ढकी बातें सुन वह आहत हुई थी। शादी नाम से ही लगता धोखा दे रही है वह अपने जीवन साथी को... ईमानदारी की बात तो यह है कि यह हादसा भी पहले से बता दिया जाना चाहिए जैसे ज़िंदगी के और हादसे बता दिए जाते हैं।

एम.ए. का आखिरी पेपर देकर अपने कमरे में पांव रखा ही था कि किवाड़ों के उस ओर से लात घूंसों की आवाजें, मौन सन्नाटे में दहाड़ता मर्दाना स्वर... इश्क लड़ायेंगे बरखुरदार... हम समझ रहे हैं इधर घंटों घुसे पढ़ाई कर रहे हैं साहबजादे। कल ही अपना बोरिया बिस्तर बांधो... तुम्हें बैंग्लोर भाई साहब की देखरेख में हॉस्टल में रहकर अपनी पढ़ाई पूरी करनी है।''

फिर काफी देर तक बोझिल सन्नाटा रहा। वह भी चुपचाप अपने पलंग पर सीधी तनी सांस रोके लेटी रही। थोड़ी देर बाद फिर वह फुस-फुसाहट... लेकिन अब की बार आत्मविश्वास से भरी और स्पष्ट... ''सुनो मनोरमा... मेरा इंतजार करना, दो साल में जब इंजीनियर बनकर लौटूंगा तो इस किवाड़ पर पड़े भारी भरकम ताले की चाबी भी साथ लाऊंगा मेरा इंतज़ार करना।

वह वैसी ही सीधी तनी लेटी रही.. सन्नाटा फिर से लौट आया और तेजी से पसरने लगा।

शान्तनु अब नहीं रहे। बेटा भी बहू के साथ लंदन जा बसा है.. बस वह है और यह कोठी जो उनके जीवन के प्रत्येक क्षण की साक्षी उनकी निहायत अपनी है।

शूटिंग के तीन महीने होने को आए। आखिरी शूर के लिए रंगवाला भी आने वाले हैं। ''मैडम, आज आखिरी शूट है। उसके बाद एक गेट टु गैदर रखेंगे और तब आप हमारे साथ होंगी। प्रॉमिज़..'' वे मुस्कुरा पड़ीं। शूट के लिए तमाम कैमरे तैयार किए जा रहे हैं। उनका संगमरमर का बाथरूम.. टब... टब में ऊपर तक झाग ही झाग... हीरोइन टब में बैठी नहा रही होगी, पृष्ठभूमि में गाना चलेगा और गाना रुकते ही गोलियां चलने की आवाज़.. अंग्रेज़ों ने पूरी कोठी घेर ली होगी.. कैमरे की लाइट्स ऑन...चकाचौंध में उन्होंने जिस शख्स को हॉल में प्रवेश करते देखा और यूनिट के लोग जिन्हें रंगवाला जी संबोधित कर रहे थे वह.. वह तो वही... पिघलने लगा देह पर खुदा शिलालेख... अक्स हुआ वह घिनौना चेहरा पूरी क्रूरता से कसमसा उठा। अड़तीस सालों में एक क्षण को भी तो नहीं भूल पाई हैं वे इस चेहरे को। जैसे अड़तीस सालों से बंद पड़ी कुठरिया में एक बार फिर खींच ली गई हों। उनकी देह पर उसकी कठोर उंगलियों के निशान गहरे उभर आए हों.. नाखूनों से डाली गई खरोंचों पर लहू छलक आया हो और मुंह में ठूंसे दुपट्टे से घुटती सांसों को बिखरना साफ महसूस कर रही हों। भले ही चेहरे पर ढलती उम्र ने अपनी छाप छोड़ दी है। आंखों पर चश्मा चढ़ आया है, सिर के बाल झड़ कर गंजी चांद उनकी ज़िंदगी को खिज़ां में बदलने का भुगतान है मानो। फिर भी कैसे भूल सकती हैं वे ये चेहरा?

सहसा वे बालकनी में झूले पर बैठी-बैठी ढह गईं। तभी गोलियां चलीं... शॉट ओ.के. हुआ और शैम्पेन की बोतलें खुल गईं। मलय उन्हें ढूंढता तीन महीनों में पहली बार हॉल की सीढ़ियां चढ़ रहा था। उन्हें झूले पर नीम बेहोशी में पा सकपका गया-मैडम, क्या हुआ?

रात देर तक पार्टी चली। पूरी यूनिट विदा हो चुकी थी... बस मलय था और कोठी की दीवारों को जैसी की तैसी पेंट करने वाले कुछ कारीगर...

''अब कैसी तबीयत है मैडम? सर आपसे मिलना चाहते थे।''

''ठीक हूं, मलय जी, पेंट मत कराइये दीवारों पर... इन्हें ऐसी ही रहने दीजिए.. याद बनी रहेगी कि इधर कभी शूटिंग हुई थी आपके सर की फिल्म की।''

ओ.के. थैंक्स.. आपके को-ऑपरेशन के लिए थैंक्स मैडम...

पूरी यूनिट विदा हो चुकी थी। तीन महीनों की चहल-पहल के बाद सूना हॉल दहशत फैला रहा था। तमाम दीवारों पर पड़ी खरोंचें सैंतीस वर्षों का अंतराल लांघ ऐन उनके सामने थीं। गरम, उबलते लावे का देह से उठता रिसाव उन्हें झंझोड़ गया था। वे तड़प उठी थीं दोबारा उसी हादसे में उसी व्यक्ति की गिरफ्त में स्वयं को पा...

ooo

संशय के चक्रव्यूह

❑ डॉ. क्षमा चतुर्वेदी

रीना ने टी.वी बंद करके पांचवीं बार फिर घड़ी देखी थी। उफ साढ़े सात बज गए हैं, जयंत को ऑफिस में ही कोई काम था कम-से-कम फोन ही कर देते.. पता है कि घर में बीवी अकेली है, शाम के पांच बजे से ही इंतज़ार शुरू हो जाता है। खाना तक वह शाम को बनाकर रख देती है ताकि पति के आने पर आराम से गपशप हो, कहीं घूमने-फिरने जा सकें...

और फिर फोन...फोन तो कर ही सकते थे... आज सुबह ही वादा किया था कि शाम को बाज़ार चलना है, अगले हफ्ते रीना का जन्मदिन है तो कोई अच्छी-सी गिफ्ट लेंगे और बाहर खाना खाएंगे... रीना का मूड बिगड़ने लगा था, अब बाहर क्या जा पाएंगे। बेमन से ही फिर खाना बनाया.... अब तो साढ़े आठ बजे गए थे क्या करें... ऑफिस में भी कोई फोन नहीं उठा रहा था, दो-तीन बार प्रयास कर चुकी थी।

कई बार जो जयंत की इन्हीं आदतों से वह इतनी परेशान हो जाती है कि मन होता है कि वह भी कहीं चल दे क्या करे... नौकरी थी तो जयंत की घर, ससुराल सबसे इतनी दूर कि आसानी से कहीं आ-जा भी नहीं सकती। पास-पड़ोस में बस एक सुधा भाभी है जिनसे कभी-कभार बात हो जाती है पर आज तो शायद वह भी घर पर नहीं है, कोई फोन नहीं उठा रहा है।

तभी बाहर कार का हॉर्न बजा था... तो जनाब अब तशरीफ लाए हैं, ठीक है वह भी अब कोई बात नहीं करेगी... देर तक घंटी बजती रही तब जाकर उसने दरवाज़ा खोला और अंदर आ गई...

''अरे रीना... यह क्या मज़ाक है और दरवाज़ा खोलने में इतनी देर क्यों लगाई...''

''चलिए, आपको घर की याद तो आई... मैं तो सोच रही थी कि आज शायद ऑफिस में ही रात-भर रुकने का इरादा है....''

रीना का मुंह अभी भी फूला हुआ था।

''अरे बॉस के घर पर मीटिंग चल रही थी, एक बहुत ही उलझा हुआ मामला

था, उसी के सिलसिले में... और हां, मेरा सामान जमा दो, परसों बैंकाक जाना है...."

"क्यों..."

बैंकाक का नाम सुनते ही रीना अपनी पुरानी परेशानियां भूल गई थी, बैंकाक.. जयंत के कहीं बाहर जाने के नाम से ही उसे दहशत होने लगती थी।

"कितने दिन के लिए..."

स्वर की मायूसी वह छिपा नहीं पाई थी।

"सॉरी डार्लिंग... मुझे घर में घुसते ही तुम्हें यह खबर नहीं देनी थी... पर क्या करूं... मुंह से निकल ही गया... मुझे पता है कि मेरे कहीं बाहर जाने के नाम से ही तुम परेशान हो जाती हो, जयंत ने रीना को अपने पास खींच लिया था...

"मूड मत ऑफ करो.. तुम्हारे जन्मदिन पर तो मैं किसी भी हालत में यहां आ ही जाऊंगा।

"झूठ.. तुम झूठ बोल रहे हो।"

रीना रुआंसी हो गई थी।

"नहीं, मैं बिल्कुल सच कह रहा हूं... मेरा तो जरा भी मन नहीं था बैंकाक जाने का, पर क्या करूं.. नौकरी की मजबूरी है बॉस ज़ोर दे रहे हैं और फिर वे खुद भी जा रहे हैं तो मैं कैसे मना कर दूं..."

जयंत कहता जा रहा था।

"खैर चलो, खाना तो खिलाओ, मुझे तो ज़ोर की भूख भी लग रही है, पता है शाम से कुछ भी नहीं खाया है...

रीना ने खाना लगा दिया..

इसके बाद जयंत कागज़, फाइलें समेटने में लग गया पर रीना अनमनी-सी ही रही, यही तो प्राब्लम है इस नौकरी की, चाहे जब चाहे कहीं भेज देंगे जयंत को। यह भी नहीं सोचेंगे कि और किसी को भी भेजा जा सकता है। वे लोग नव-निवाहित हैं और फिर अपनों से दूर... इस शहर में नितांत अकेले हैं... वह तो मुश्किल से दिन-भर के आठ-दस घंटे जयंत से दूर रहकर बिता पाती है और अब चार-पांच दिन, अभी पिछले महीने तो दिल्ली चले गए थे... घर भी तो ऐसा है कि आसपास ढंग का पड़ोस तक नहीं....

रात को भी उसे देर तक नींद नहीं आई थी। शादी होते ही वे लोग बैंगलोर आ गए

थे... तब वह कितनी खुश थी। नया शहर, नया माहौल... पति का सान्निध्य.. शानदार नौकरी... फ्लैट, गाड़ी सब कुछ था जयंत के पास। फिर यहां आने पर उसने भी पत्रकारिता का कोर्स ले लिया था।

फ्लैट में वैसे तो सब आराम था पर वह कुछ ही दिनों में ऊबने लगी थी। ऐसा लगता था जैसे इस घर में कोई प्राइवेसी है ही नहीं, नीचे के फ्लैट में प्रसाद जी रहते थे। उनकी तीन बेटियां चाहे जब घर में आ घुसतीं। बड़ी दोनों कालेज में थीं और छोटी स्कूल में, चूंकि जयंत पहले से वहां रह रहा था और पड़ोस में घुल-मिल जाने की उसकी आदत भी थी, इसीलिए प्रसाद जी के यहां से काफी घनिष्ठता हो गई थी। मिसेज प्रसाद जिन्हें वह आंटी कहता था अक्सर कुछ-न-कुछ खाने-पीने के व्यंजन बनाकर भेजती रहती और ये तीनों लड़कियां तो जयंत को जैसे घेरे ही रहती, बस उसके ऑफिस से आने का समय होता इसके पहले ही कोई-न-कोई आ धमकती..।

वह तो अंदर चाय, नाश्ता बनाती और ये लोग जयंत को बातों में उलझाए रखतीं। उनके जाते ही वह जयंत से उलझ पड़ती।

''क्यों इतनी लिफ्ट दे रखी है, इन्हें समय, बेसमय चाहे जब आ धमकती हैं और कोई काम है ही नहीं इनके पास सिवाय तुमसे गपशप करने के...''

''रीना अच्छा है न, तुम्हें अकेलापन नहीं लगेगा...''

''मुझे.. अरे वे तुमसे बातें करने आती हैं, मुझसे नहीं, देखा नहीं जूही तो तुमसे लिपट ही गई थी...''

रीना और चिढ़ जाती।

''अरे, मेरी छोटी बहनों जैसी हैं ये भाई, कोई है नहीं तो मुझे हंस बोल लेती हैं... अंकल, आंटी भी तो कितना ख्याल रखते हैं हम लोगों का...''

''हम लोगों का नहीं.. तुम्हारा... तुम्हारा अकेले का...''

रीना का गुस्सा बढ़ता जाता और फिर जैसे ही कंपनी का यह बंगला मिला, उसने सामान बांधना शुरू कर दिया था। जयंत ने टोका भी था।

''रीना, वहां दिन-भर अकेली रह लोगी, आसपास कोई ढंग का पड़ोस भी नहीं है और इतना बड़ा घर...''

''मुझे तो बड़े घर ही अच्छे लगते हैं, उसे ढंग से सजाएंगे, बाहर लॉन लगाएंगे.. कितना शौक है मुझे पड़े-पौधों का... और अकेलेपन का क्या... वैसे ही पढ़ाई में व्यस्त रहती हूं...

रीना ने फौरन फैसला कर लिया था।

इस बड़े बंगले में आकर उसने चैन की सांस ली, कम-के-कम प्रसाद जी की बेटियों

से तो छुटकारा मिला, कुछ दिन तो घर को ही ठीक-ठाक करने में लग गए थे।

अब जरूर कई बार यह बड़ा घर अकेलेपन का एहसास कराने लगा था।

दूसरा दिन तो जयंत के जाने की तैयारी में ही बीता था।

रात में सोने के लिए कंपनी का ही चौकीदार आ गया था...

देखो, दिन में अकेलापन लगे तो सुधा जी से बात कर लेना, और मैं जल्दी ही आने का प्रयास करूंगा।

जयंत कहता जा रहा था।

फिर उसके जाने के बाद, रीना ने सुधा जी को फोन कर दिया था,

''अरे! अकेली हो तो यहीं आ जाओ, मैं गाड़ी भेज देती हूं...''

रीना को भी अच्छा लगा था, सुधा जी भी उस दिन अकेली थी। देर तक गपशप होती रही।

''और जयंत का फोन आ गया...''

''नहीं, रात को फोन करेंगे... अभी तो मीटिंग में व्यस्त होंगे...''

''हां, फोन जरूर करना.. और तूने बैंकाक अकेले जाने कैसे दिया उसे.. जानती नहीं कि कितना खतरनाक देश है। अरे, औरतें वहां मर्दों की मसाज करती हैं और पता नहीं कितनी तरह के आधुनिक क्लब हैं, बस ये लोग तो मौज-मस्ती करने जाते हैं वहां, तू ध्यान रखना...''

सुधा जी बातों-ही-बातों में कहती जा रही थीं कि उधर रीना का दिल बैठा जा रहा था... यह सब तो बने उसने सोचा ही नहीं था। तभी जयंत इतने उत्साह से जाने की तैयारी कर रहा था... उसने एक बार भी नहीं कहा...

''रीना डार्लिंग कैसे गुजरेंगे तुम्हारे बिन ये दिन...''

बस वही अपना रोना रोती रही थी और जयंत समझाता रहा था और सुधा जी सही कह रही है कि जयंत को पहुंचते ही फोन कर ही देना था।

फिर रीना का वहां मन भी नहीं लगा था। उखड़े मूड से घर आई। अब जयंत के फोन का इंतजार था। वह तो कह देगी कि जल्दी घर लौटो, भाड़ में जाए तुम्हारी मीटिंग...

रात के दस बजे के करीब जयंत का फोन आया था तो वह उबल पड़ी थी, ''अब याद आई है फोन की, मैं दिन-भर परेशान रही...''

पर मैंने कहा था न कि वहां पहुंचते ही मीटिंग है, होटल भी अब पहुंचा हूं...''

जयंत का स्वर शांत था...

''अच्छा तो होटल का नंबर दे दो, मैं ही फोन कर लूंगी...''

''नंबर तो नोट कर लो पर मैं सुबह सात बजे निकल जाऊंगा एक जगह विज़िट है और फिर ग्यारह से शाम सात बजे ऑफिस.. रात को ही फोन कर पाऊंगा...''

ज़्यादा बातें भी नहीं हो पाई थी, फोन कट गया था, रीना ने फिर लगाने की कोशिश की पर लाईन ही नहीं मिल रही थी।

पता नहीं कैसे बीतेंगे ये चार दिन, वह समझ नहीं पा रही थी, यहां से फोन लगाओ तो पहले तो होटल की रिसेप्शनिस्ट बोलेगी... उसके उच्चारण समझना अलग मुश्किल काम था.. जैसे-तैसे कमरे का नंबर दो तो पता चलेगा कि जयंत अभी लौटा ही नहीं है।

बस दूसरे दिन रात को ही फोन आया था जयंत का...

''रीना... कल हमें दूसरी जगह जाना है, मैं परसों ही फोन कर पाऊंगा।''

''कहां जाना है...''

''कहा न कि कल ही तय हो पाएगा, मैं तुम्हें फोन कर दूंगा...''

उफ जयंत को तो अब फोन करने, सुनने में भी परेशानी होने लगी है, मुझे नंबर बता दो, मैं फोन कर लूंगी.. पर नहीं... रीना की भूख, नींद सब गायब होने लगी थी, बस फोन की घंटी का इंतज़ार रहता, सुधा जी का फोन आया था, बुलाया था, पर वह टाल गई।

तीसरे दिन जब जयंत का फोन नहीं आया तो वह सचमुच घबरा गई थी। क्या हुआ... आज तो सुबह ही फोन करने की बात थी... इसी वजह से वह रात-भर सो भी नहीं पाई थी।

खुद ही फोन लगाया तो होटल की रिसेप्शनिस्ट के अंग्रेजी के उच्चारण मुश्किल से समझ में आए... उसने जयंत के कमरे का नंबर दिया तो वहां से किसी लड़की के थाई उच्चारण के शब्द टेलिफोन पर सुनाई दिए।

''मैं... मैं जयंत से बात करना चाहती हूं.. जयंत इज़ देअर...''

बड़ी मुश्किल से रीना बोल पाई थी। तब तक फोन कट गया था। तो... तो क्या जयंत किसी लड़की के साथ था।

इतना बड़ा धोखा... इसीलिए फोन नहीं कर रहा है... वह रो पड़ी थी... क्या करे.. कहां जाए... मन तो हुआ कि गुस्से में जयंत के बॉस को ही फोन कर दे.. कहां भेज दिया उन्होंने जयंत को।

पर उनका नंबर भी नो रिप्लाई था।

नहीं अब वह नहीं झुकेगी... बहुत हो चुकी जयंत की खुशामद... इसीलिए उसे इतनी शह मिल गई है, ठीक है जब उसे ज़रूरत नहीं है तो वह भी क्यों रहे यहां और किस अधिकार से...

वह भी कल मां के पास चली जाएगी... गुस्से में रीना ने अपना सामना भी पैक कर लिया था और स्टेशन पर फोन करके गाड़ी का समय पूछ ही रही थी कि तभी दरवाजे की घंटी बजी थी...

जयंत..

एक बार तो वह चौंक ही गई थी।

''है न प्लेजेंट सरप्राइज... मैंने कहा था न कि तुम्हारे जन्मदिन के पहले आ जाऊंगा... कल तुम्हारा जन्मदिन है।''

इसीलिए आज...

जयंत रीना को बांहों में लेने के लिए आगे बढ़ा तो वह पीछे हट गई।

''क्या हुआ... क्या बात है डार्लिंग...''

वह कुछ समझ नहीं पा रहा था कि रीना फट पड़ी, सारा गुबार आंसुओं के साथ बह निकला...

''वहां तुम दूसरी औरतों के साथ गुलछर्रे उड़ाते रहे और मैं पागल-सी तुम्हारे फोन का इंतज़ार करती रही, अब समझ में आया कि क्यों जाते हैं लोग बैंकाक... मुझे सुधा जी ने सब बता दिया है...''

''क्या बता दिया है, तुम तो सचमुच पागल हो गई हो.. बिना वजह मुझ पर शक किए जा रही हो...''

जयंत को भी गुस्सा आ गया था।

''हां-हां शक कर रही हूं, कौन औरत थी कल रात को तुम्हारे कमरे में... आज सुबह फोन मिलाया तो उसी की आवाज़ थी...''

''औरत... की आवाज़... कैसी बातें कर रही हो... आज सुबह चार बजे तो मैं होटल छोड़कर एयरपोर्ट आ गया था कि जल्दी थी की फ्लाइट मिल जाए और मैं समय पर पहुंच सकूं। जन्मदिन की गिफ्ट भी पैक करवाई थी...''

''अच्छा तो फिर बहाना....''

''अरे बाबा बहाना नहीं है देखो कितनी सुंदर फर की जैकेट ली है और लीची का पैकेट... अरे कहां है... जयंत ने पूरा बैग उलट दिया था,

''हां-हां... बनाओ न बहाने.. झूठ के पांव थोड़े ही होते हैं।''

रीना फिर रोने लगी थी।

और फिर पूरी शाम इसी लड़ाई-झगड़े में बीती.. यहां तक कि रात का खाना भी नहीं बना... रीना अडिग थी मायके जाने को..

''ठीक है, जैसे तुम चाहो...''

जयंत फिर ड्राईंग रूम में सोने चला गया था और रीना के आंसू बहते रहे थे, नींद किसी को नहीं आ पाई थी।

सुबह-सुबह दरवाजे की घंटी बजी थी, इतनी सुबह तो दूधवाला भी नहीं आता कौन होगा... उधर जयंत ने दरवाजा खोला..

''अरे सर आप... इतनी सुबह''

''यस... मिस्टर जयंत... मैं अभी एयरपोर्ट से ही आ रहा हूं... तुम कल शोपिंग के बाद वाइफ का प्रेजेंट होटल के काउंटर पर ही छोड़ आए थे और मुझे याद आया कि आज ही उसका जन्मदिन है इसीलिए तो तुम जल्दी में थे.... तो उसी को लेकर...

बैग में से दो बड़े पैकेट निकालकर उन्होंने जयंत को थमाए थे... तब तक रीना भी वहां आ गई थी।

''गुडमार्निंग मैम... खुशनसीब हैं आप... देखिए आपसे मिलने की जल्दी में और फ्लाइट के चक्कर में आपके मिस्टर आपकी गिफ्ट ही छोड़ आए.. वो तो अच्छा हुआ कि काउंटर पर ही रखी मिल गई, कमरा तो किसी और को बुक हो गया था... अच्छा तो मैं चलूं।

''सर आप चाय...''

''अरे नहीं... अभी तो घर पहुंचना है... हैव ए प्लीजेंट बर्थडे... ओ.के..

बॉस के जाने के बाद जयंत ने दरवाज़ा बंद किया, रीना ने कान पकड़ कर माफी मांगी और जयंत के गले लग गई... शायद आज पहली बार रीना को अपनी गलती का आभास हुआ हो... या नहीं भी...

जयंत भी यही सोच रहा था।

ooo

अदृश्य सखा

□ मंगला रामचन्द्रन

देव आकर चुपचाप बैठ गया। मिथिलेश ने काम करते-करते सिर उठा कर देव की तरफ देखा और सदैव की तरह मुस्कुरा कर स्वागत किया। पर ये क्या? देव के चेहरे पर प्रतिक्रिया स्वरूप कोई भाव नहीं आये। न मुंह से शब्दों के रूप में कोई उद्‌गार। मिथिलेश को देव का व्यवहार बहुत अजीब लगा। काम रोक कर, चश्मा उतार मेज़ पर फाईल के ऊपर रखा फिर देव की ओर मुखातिब हुआ।

'बोलो क्या लोगे? वही इलायची वाली चाय और आलूबड़े या कुछ और। - मिथिलेश स्थिति को सहज बनाने की कोशिश कर रहा था। देव जब भी यहां ऑफिस में मिलने आता तो चाय और आलूबड़े जरूर लेता। मिथिलेश से इतनी बातें करता। बल्कि कहें कि चहकता तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। सदा खुश रहता और एक रौ में बहते हुए इतनी बातें कर जाता कि मिथिलेश का मन तृप्त और प्रसन्न हो जाता। अपनी छुटकी की सही व्यक्ति के साथ गठबंधन करने की खुशी होती। छुटकी उसकी नन्हीं-सी बहन ही नहीं, बेटी सदृश्य थी। तीन भाइयों के बाद मानों राखी बांधने के लिये पैदा हुई थी। सबसे बड़े मिथिलेश से तो वो 14 वर्ष छोटी थी। तीनों भाइयों की दुलारी नेहा सबसे बड़े भैया मिथिलेश की तो आंखों की पुतली थी। जब चार साढ़े चार वर्ष की थी तभी माँ-बाबूजी की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। नेहा भी उनके साथ थी पर कुछ चोट लगने के अलावा वो सही सलामत रही। तब से एक तरह से भैया ही उसके सरपरस्त रहे। हालांकि कभी मौसी, कभी बुआ या मामी आ कर उसकी देखभाल करते रहे। नेहा के लिये भी मिथिलेश बड़े भैया के रूप में उसके सब कुछ थे।

मिथिलेश अपनी कुर्सी से सामने सोफे पर बैठे देव के पास आया। 'क्या बात है, इतने सुस्त क्यों लग रहे हो?

देव के मुंह से आदतन निकल गया-'जी-पर तब भी वो क्रिसी उहापोह में पड़ा हुआ ही लगा।

देव का ऐसा रूप मिथिलेश ने कभी नहीं देखा था। एक विचार ने अचानक उसके दिमाग में जन्म लिया और वो सिहर गया। कहीं नेहा की तबीयत तो खराब नहीं हो गई। या देव औ नेहा के बीच कोई कहा-सुनी.....

---

* ४९ डी/डी/एस-३, स्कीम-७८, अरण्य, ए-बी रोड, इंदौर -४७२०१० दूरभाष क्र. - २५५८६४३

इन विचारों को खारिज करते हुए, जी को कड़ा करके मिथिलेश ने देव से पूछ ही लिया .....

'नेहा से झगड़ा तो नहीं हो गया? अरे भई, मेरे पास आये हो तो बताना भी तो पड़ेगा कि क्या बात है? तुम्हारे मन में जो भी हो बता दो, तुम मुझे नेहा का ही नहीं अपना भी बड़ा भाई मानते हो न?' किसी असहज उत्तर की आशंका में होते हुए भी मिथिलेश ने मन के भय को शब्दों का जामा पहनाते हुए पूछ ही लिया।

'आपको तो मैं बड़ा भाई ही नहीं, गुरु और पथप्रदर्शक भी मानता हूँ। आपके लिये मेरे मन में कितनी श्रद्धा है, मैं बता नहीं सकता। तभी तो मन की दुविधा लिये यहां आ पहुँचा।'

'तो फिर उस दुविधा को शीघ्र ही मन के बाहर निकालो, छाती पर रखा पत्थर भी हट जायेगा।' मिथिलेश ने देव के कंधे थपथपाते हुए, उसके करीब बैठते हुए कहा।

'सच कहूँ तो मैं स्वयं भी नहीं समझ पा रहा हूं कि बात क्या है, मेरे मन में जो ख्याल आ गया है उसका औचित्य है भी या नहीं।' देव ने हिचकते हुए कहा।

'औचित्य की बात हम बाद में सोच कर तय करेंगे। पहले बात का खुलासा कर दो तो मेरी उलझन भी कम होगी और शायद तुम्हारी परेशानी भी' -

'भैया, आप मुझे गलत मत समझियेगा, पर मुझे लगता है कि नेहा को मुझसे नहीं किसी और से लगाव है।' .....

'क्या-क्या?' मिथिलेश राहत की सांस-सी लेते हुए बोला- 'ऐसा तुम्हें क्यों लगा?'- मिथिलेश अपनी नेहा को इतने अच्छे से जानता था कि देव की बात को दिल ही दिल में सिरे से खारिज कर चुका था।

''मुझे जो लगा मैं बताऊँगा पर वादा कीजिये कि आप नेहा को इस बारे में कुछ नहीं बतायेंगे। दूसरी बात, आप ये कदापि न सोचें कि मैं पस्सेसिव हूँ या मुझमें ईर्ष्या की भावना है।''-देव अब तक खुल चुका था।

'देखो देव, नेहा और तुम्हारी शादी से पहले तुम्हें देख-परख कर, ये सुनिश्चित कर लिया कि नेहा के लिये इससे अच्छा वर नहीं मिलेगा तब जाकर गठबंधन हुआ। तुम लोगों का विवाह हुए तेरह वर्ष हो चुके हैं। इन तेरह वर्षो में तुम्हारे प्रति मेरे विचारों को बल ही मिला है। सो तुम जो भी बोलोगे मैं उसी तरह सुनूँगा और ध्यान दूँगा जितना एक बड़ा भाई छोटे भाई को सुनता है।'

मिथिलेश की आश्वासन भरी वाणी ने मानों देव में नई जान डाल दी।

'हो सकता है, मेरी बातें टुकड़ों-टुकड़ों में बिना तारतम्य के हों, जो वाकया याद आयेगा बताते जाऊंगा। इसीलिये कहीं से इसकी न तो शुरुआत है न अंत। कई बार लगा कि

वो मेरे प्रति सारे फर्ज़ निभाते हुए भी किसी और दुनिया में, किसी और सोच में डूबी रहती हो। जब से अजय को बोर्डिंग स्कूल में डाल दिया तब से तो मानों उसका स्वप्नजीवी रूप ही सामने दिख रहा है.... देव रौ में बोलता जा रहा था, शायद और भी बोलता चला जाता। पर मिथिलेश ने बीच में ही उसे एक दूसरी बात पर टोक दिया।

'देव, एक बात तो है तुमने अजय को इस छोटी उम्र में घर से दूर कर दिया, ये मुझे भी कुछ ठीक नहीं लगा। ले-देकर एक तो बच्चा है, उसे भी नेहा से दूर कर दिया।'

'भैया, अजय का जीवन नियमित, अनुशासित हो जाये इसलिये तो आर्मी स्कूल में भेजने का फैसला किया था। वहां छठवीं में ही लेते हैं वरना मेरी भी इच्छा इतनी जल्द भेजने की नहीं थी। कलेजे के टुकड़े को अपने से दूर कौन भेजना चाहेगा? - देव अपराधी की तरह दलीलें देता जा रहा था।

'माफ करना देव, मैंने तुम्हारे दिल को शायद चोट पहुँचा दी। असल में नेहा का इस तरह अकेला हो जाना मेरे दिल को खटक गया। खैर तुम अपनी बात पर आ जाओ। तुम्हें लग रहा है कि नेहा स्वप्नजीवी को तरह जी रही है, है ना?'

'भैया, आप विश्वास नहीं करेंगे। शाम को ऑफिस से आता हूँ तो कभी कैरम, कभी लूडो या शतरंज की बिसात बिछी हुई रहती। मैं नेहा से पूछता 'किसके साथ खेल रही थी?' तो कहती वो दूसरा है ना। यदि पूछता हूँ कि कौन है वो दूसरा तो बस हंस देती, टाल देती या कभी-कभी कहती वो मैं ही तो हूँ। समझ नहीं आता की उसकी बात का क्या अर्थ निकालूँ। आप से कुछ छिपाना नहीं चाहता, मैं तो घर में किसी दूसरे के होने के सबूत के लिये कुत्ते की तरह सूंघता रहा। पर कुछ नहीं मिला।' - देव की आवाज़ में निराशा की झलक का आभास पा मिथिलेश ने मजाक में कहा - 'सबूत न पाकर तो तुम्हें खुश होना चाहिए, तुम तो निराश से लग रहे हो, सच मानों देव, सबूत तो तुम्हें मिलेगा भी नहीं, क्योंकि के दूसरा कोई और नहीं नेहा का 'अदृश्य सखा' ही है।'

'क्या मतबल?, अदृश्य सखा? मैं कुछ समझा नहीं। - हैरान-परेशान सा देव बोल पड़ा?

'ऐसा करते हैं, आज मैं अपने दफ्तर का काम यहीं बंद कर देता हूँ, बात को ढंग से, पूरी समझाने के लिए मुझे पुरानी बातों से प्रारंभ करना पड़ेगा तुम्हारे पास सुनने के लिए समय हैं। 'आज जब तय करके आया हूँ कि आपको सारी बात बताऊंगा तो आपकी बात भी पूरी सुनूँगा।' देव कुछ नया जानने की उत्सुक्ता से तैयार हो गया।

'देव तुम्हें ये तो पता है कि नेहा चार-साढ़े चार वर्ष की थी जब एक हादसे में मां-बाबूजी की मृत्यु हो गई थी। नेहा उनके साथ थी पर मामूली चोटों के अलावा वो सही सलामत बच गई थी। पर उसने मां-बाबूजी के रूप में एक तरह से अपना दोस्त, संगी-साथी, अपनी दुंनिया, सभी कुछ खो दिया था। पर तीनों भाई अपनी-अपनी पढ़ाई में इस कदर मसरूफ रहा करते थे कि नेहा के साथ खेलना चाह कर भी नहीं खेल पाते। मां-बाबूजी के

लिये वो एक जीता-जागता, जिन्दगी से लबरेज खिलौना थी। ऐसे में नन्हीं नेहा से उसके सबसे प्रिय साथियों का सदा के लिये छिन जाने के दर्द का सही अहसास और अनुमान हम नहीं लगा सकते।' -मिथिलेश को स्वयं को संभालने में कुछ क्षण लगे। देव ने उसे पानी पिलाया। पानी पीकर मिथिलेश कुछ याद करते हुए बोला- उस समय मामाजी और बुआजी ने हमारी देख भाल न की होती तो शायद हम सही तरह से शिक्षा भी पूरी नहीं कर पाते।'

अचानक भैया पुरानी कोई बात को सोचकर मुस्कुरा पड़े।

'पता है देव, नेहा कैसे खेलती थी। जैसे कैरम हो तो अपनी जगह से अपना दाव खेलेगी। फिर सामने जाकर बाकायदा बैठ कर दूसरे का दाव। हम लोग हंसते थे। पर मुझे हमेशा लगता था कि अकेली हो जाने से, उसने अपना एक कल्पित साथी ढूंढ लिया था। मैं नेहा से कहता कि दूसरे का दाव यहीं बैठ कर क्यों नहीं देती तो वो कहती 'भैया वो तो चीटिंग होगी।' मुझे उस नन्हीं नेहा की वो भोली मुद्रा कभी नहीं भूलती। एक बात समझना बहुत जरूरी है कि 'दूसरा' से उसका मतलब किसी पुरूष से नहीं बल्कि एक साथी, सखा से है जो उसके हर क्रिया-कलाप में जीवंतता से उसका साथ दे। अब जब वो अजय के जाने के बाद फिर कुछ अकेलापन, समय की अधिकता आदि से घिर गई तो उसी तरह खेलने लगी होगी।'

'स्कूल-कालेज जब जाने लगी थी तब भी ऐसी ही करती थी क्या? -देव ने जिज्ञासा से पूछा।

'अरे' नहीं, तब तो पढ़ाई का बोझ, गाना-बजाना और इतनी सारी सहेलियों के साथ उसके पास अपनी भाभी के लिये भी समय नहीं रह पाता था। पर हम लोग उसकी 'मेरी चान्स' ये दूसरे की चान्स' कहती हुई मुद्रा को याद कर हंसते रहे थे।

तभी फोन घनघनाया। 'आप अभी तक घर क्यों नहीं आये। बच्चे और नेहा आपकी राह देख रहे हैं। देव को फोन करते हैं तो उसमे फोन बंद करके रखा हुआ है। उसे भी लेकर आ जाइये।'

पीछे से नेहा की आवाज़ आ रही थी- 'भाभी भैया से कहिये कि मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं, जल्दी आ जायें।'

'देव यहीं मेरे ही पास बैठा हुआ है। खाना लगा दो हम लोग पहुँच ही रहे हैं।'

'चलो देव घर चलें नेहा भी वहीं है। साथ में खाना खायेंगे। बाकी बातें फिर कभी' - भैया ने कमरा बंद करते हुए कहा।

'बाकी बातों के लिये गुंजाइश भी नहीं है और मन में शंका भी नहीं है। अब तो मेरी भी भूख तेज हो गई। कितने दिन से ठीक से खाया नहीं न चैन से सोया।' - कहते हुए देव ने भी जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाये। मन-ही-मन तय किया कि नेहा को और अधिक समय देगा, उसके क्रिया-कलापों से भी जुड़ेगा।

ooo

मेरी अपनी

❑ कुहेली भट्टाचार्य

रात के नौ बज चुके थे। रूद्रपुर स्टेशन आने ही वाला था। सब लोग जो आगे जानेवाले थे आराम से बैठे हुए थे। हम एकआध ही थे जो रूद्रपुर में उतरने वाले थे । मैंने अपना बैग उपर रैक से निकाल अपनी सीट के ऊपर रख दिया। मेरे सामने एक महिला बैठी हुई थी जो काठ गोदाम जाने वाली थी। हम पूरे रास्ते बातें करते-करते आये थे, इसलिए दिल्ली से रूद्रपुर का रास्ता अच्छे से कट गया। उस महिला से मैंने कहा - अच्छा मेरा स्टेशन तो आ गया आपकी यात्रा शुभ रहे। उस महिला ने कहा- अब तो मैं बोर होते-होते जाऊंगी । मैंने कहा-सो लेना, वक़्त कट जायेगा। महिला हंसी।

ठीक नौ बजकर दस मिन्ट पर ट्रेन रूद्रपुर स्टेशन पर रुकी। मुझे पहले से ही पता था ट्रेन दो मिनट के लिए ही यहां रुकती है। मैं जल्दी-जल्दी आना बैग उठाये प्लेटफार्म पर उतर गई। पूरा स्टेशन सुनसान था। इक्का-दुक्का वेन्डर चाय लेकर घूम रहा था। एक मात्र दुकान अब तक खुली हुई थी शायद इसी ट्रेन के इंतज़ार में। जिस ट्रेन से मैं आई थी वो जैसे मुझे उतार कर ही ओझल हो गई। स्टेशन और भी सुनसान लगने लगा। मैं इधर-उधर देख रही थी और सोच रही थी आगे के रास्ते के बारे में। और जल्दी-जल्दी पैर चलाकर स्टेशन से बाहर निकल आई। रात बहुत नहीं थी, पर ऐसा लग रहा था जैसे आधि रात्रि है। बाहर एक भी रिक्शा नज़र नहीं आ रहा था। मुझे पता है सिवाय रिक्शे के यहां और कोई वाहन नहीं मिलता। अब मैं क्या करूं? बस स्टेण्ड तक कैसे जाऊं। यही सब सोच रही थी कि पीछे से किसी ने आवाज़ दी।

-दीदी आपको बस स्टेण्ड जाना है ना। आप सितारगंज जायेंगी?

-हां, मुझे सितारगंज जाना है। पर बस स्टेण्ड के लिए कोई वाहन तो चाहिए ना। यहां तो कोई रिक्शा भी नहीं है।

-मैं देखता हूं, थोड़ा-सा आगे बढ़कर। आप यहीं पर खड़े रहिए।

-अच्छा ठीक है।

वो लड़का आगे बढ़ गया। मैं सोच रही थी इसकी शक्ल देखी हुई लग रही है। पर कहां देखी, और इसे पता कैसे है कि मुझे सितारगंज जाना है। चलो छोड़ो। फिलहाल

* 12312 सुन्दर अपार्टमेंट जि॰ एच -10 नई दिल्ली - 110087

किसी तरह बस स्टेण्ड पहुंचना है। आगे की तरफ देखा तो कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था। अंधकार केवल अंधकार। इतने में वो लड़का एक रिक्शा पर बैठकर मेरी तरफ आ रहा था। मैं आगे बढ़कर उस रिक्शे पर बैठ गई। रिक्शा चलने लगा। रास्ता सुनसान और अंधकारमय था। मुझे थोड़ा-थोड़ा डर भी लग रहा था। आगे बढ़कर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर स्ट्रीट लाईट आते ही जैसे जान-में-जान आ जाती थी। इस तरह हम शहर के अंदर आ गये। रेलवे स्टेशन शहर के बाहर ही था और बस स्टॉप शहर के अंदर। बस स्टॉप पर आने के बाद लगने लगा जैसे अब ही शाम हुई हो। चारों तरफ चहल-पहल, लोग चल फिर रहे हैं। दौड़-दौड़कर बस पकड़ रहे हैं। दुकानें खुली हुई हैं। टेप रिकॉर्डर पर जोर-जोर से फिल्मी गाने बज रहे हैं। दुकानों से आवाज़ें आ रहीं हैं -इधर दो चाय, उधर दो चाय, पांच नम्बर की टेबल पर चार चाय। इधर दो चाय समोसे। एक कोने में बेंच रखा हुआ था। वहां पर लोग बैठे हुए थे। बस ऑफिस के अंदर सीमेंट का बेंच भी था जो कि भरा हुआ था। बैठने के लिए कोई जगह नहीं बची थी। मैंने सोचा पहले बस का पता कर लूं। इतने में उस लड़के ने बोला आप मेरा बैग और अपना बैग संभालिए मैं बस का पता करके अभी आता हूं। मैं सीढ़ियों के ऊपर ही बैठी थी काफी मच्छर थे। बहुत तंग कर रहे थे। फिर मैं दोनों बैग लेकर सामने वाली दुकान में जाकर बैठ गई जहां से आते-जाते लोग नज़र आ जायें। मैंने एक चाय के लिए बोल दिया। मुझे चाय की तलब भी लगी थी। काफी देर तक इंतज़ार करती रही। पर वो लड़का नहीं आया। इस तरह अगर मैं बैठी रहूंगी तो काम कैसे चलेगा। रात-भर यहीं रह जाना पड़ेगा। मैं एकआध लोगों से पूछने लगी टनकपुर या पिथोरागढ़ जाने वाली बस कितने बजे जायेगी, जो सितारगंज होके जाती है? एक आदमी ने कहा करीब बारह बजे की बस है। मैंने सोचा अभी तो केवल पौने दस ही बजे हैं। इतनी देर तक क्या करूंगी। फिर मैं उठकर दुकान के मैनेजर के पास गई। -भईया ये बैग एक लड़के का है मेरे पास छोड़ कर गये आधा घंटा हो गया, वो नहीं आया। इसे लेकर मैं अभी क्या करूं। उन्होने कहा -ऑफिस में जमा करा दीजिए। वो लोग एनाउंस कर देंगे, जिसका बैग होगा वो ले जाएगा। फिर भी मैं बाहर आकर इधर-इधर देखने लगी। वो लड़का मुझे नज़र आ गया। मैं भागकर उसके पास गई -कहां चले गये थे। मैं बैग लेकर परेशान हूं।

-मैं तो बस का ही पता कर रहा था। साढ़े दस बजे की एक प्राईवेट बस है। उसी से चलते हैं।

-प्राईवेट हो या सरकारी हमें क्या फर्क पड़ता है, जो बस पहले मिले उसी से जाना है। इतने में जोर-जोर से चिल्लाने की आवाज आई टनकपुर... टनकपुर। मैंने कहा चलो उसी बस से चलते हैं और हम दोनों उस बस की तरफ भागे। बस में चढ़कर देखा सामने की सीटें भरी हुई थीं। एकदम पीछे सीट मिली। किसी तरह दोनों उसी में एडजस्ट हो गये। बैठते ही बस चलने लगी। मैंने सोचा आशा जी को फोन कर दिया जाये। मैं आशा जी के घर जा रही हूं जो कि एक बहुत अच्छी लेखिका हैं। पर मेरे लिए एक बहुत अच्छी मां है। मेरी आवाज़ सुनते ही उन्होंने कहा-

-तू अभी कहां है?

मैंने कहा - मैं रूद्रपुर से रवाना हो चुकी हूं। मुझे पता नहीं कितनी देर में सितारगंज पहुंचूंगी। शायद बारह बज जायें।

- तू चिंता मत कर, मैं चौराहे पर खड़ी रहूंगी। तू मुझे सितारगंज से पहले-पहले एक फोन कर देना।

मैंने कहा-आप अकेली कैसे आओगी, साथ किसी को ले आना। एक तो सर्दी का मौसम ऊपर से गांव। बारह बजे रात को चौराहे पर अकेली कैसे खड़ी रहोगी।

-ठीक है ठीक है, तू चिंता मत कर। मैं पहुंच जाऊंगी और तुझे घर ले आऊंगी।

मैंने फोन रख दिया, और मुड़कर उस लड़के से पूछा-अच्छा ये बताओ तुम्हें कैसे पता चला कि मैं सितारगंज जाऊंगी?

-आप दूसरी महिला से बात कर रही थीं तभी मैंने सुन लिया था। मैं हंस दी। मेरी शंका दूर हो गई। रूद्रपुर से किच्छा होकर बस चलने लगी सितारगंज की तरफ, ऊबड़-खाबड़ रास्ता, और पीछे की सीट। हड्डी-पसली जैसे चूर-चूर हो रही थी। काफी समय लगा दिया, कारण रास्ते में धुंध थी। रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा था। बस में सब लोग सो रहे थे। अंजान जगह अजनबी एक लड़का साथ, फिर भी थोड़ा-सा भरोसा कि उतर कर आशा जी खड़ी मिलेंगी। अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। न जाने इतनी धुंध में अंधेरी ऊबड़-खाबड़ सड़क पर ड्राईवर कैसे बस चला रहा था। किच्छा से सितारगंज की दूरी मानों कट ही नहीं रही थी। इतने में बस कंडेक्टर ने लाईट जला दी और बोलने लगा सितारगंज आउट सितारगंज आउट। मैंने पूछा-भईया ये आउट क्या है। क्या सितारगंज आ गया ?

-नहीं नहीं अब सितारगंज और दस पन्द्रह मिनट का रास्ता है। यह तो टंकी है। मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया। बस इतना ही कि सितारगंज दस-पन्द्रह मिनट में पहुंच जायेंगे। मैंने फोन कर दिया, वो खड़ी थीं रास्ते पर। काफी दूर से मैं खिड़की से झांक कर देखने की कोशिश कर रही थी तो एक आदमी झुंझलाकर बोला-इतनी सर्दी में खुद तो मरोगी और बाकियों को भी मारोगी क्या? खिड़की बंद करो। मैंने चुपचाप खिड़की बंद कर दी। उस लड़के ने बोला गंवार लोग हैं ना। मैंने कहा - कोई बात नहीं, बस रुक गई। मुझे उतार कर चली भी गई। वो लड़का खिड़की से हाथ हिला रहा था। सुनसान सड़क पर मैं खड़ी थी। अनजान एक जगह, और सर्दी का मौसम रात के पौने बारह बजे। इधर-उधर नजरें घुमाई तो एक लंबा कोट पहने औरत खड़ी थी। कोई भी साथ में नहीं था। इस तरह इतनी रात गये इस मौसम में रास्ते पर नज़र बिछाये और कौन, मेरा इंतजार करेगा। वही तो हैं मेरी अपनी, मेरी मां।

ooo

आखिरी ख़त

❑ एम. एस. कामरा

"मामा जी, मुझे अपना मोबाइल नम्बर ज़रूर भेजें। मैंने आपसे कुछ ज़रूरी बात करनी है। प्लीज़!....."

न जाने इस पत्र को गोविन्दराम जी कितनी बार पढ़ चुके थे। पत्र में एक विनती की गई थी, एक दर्दनाक-फरियाद की गई थी, जिसे वे जितना भूलना चाहते थे, वह उतना ही उनके दिल में दर्द बनकर उभर आती थी! पत्र में और भी बहुत-सी बातें थीं जो अव्यवस्थित सी, जल्दी में लिखी गई थीं जैसे कि पत्र किसी से चोरी-छिपे लिखा गया हो। न चाहते हुए भी गोविन्दराम जी पत्र को पढ़ते और तह लगाकर फिर जेब में रख लेते। वे पत्र को जितनी बार पढ़ते उतनी बार वे उदास-ख़ामोश और गम्भीर हो जाते। लेकिन न जाने क्यों वे अपनी भांजी को न तो फोन नम्बर ही भेजना चाहते थे और न ही पत्र का उत्तर ही देना चाहते थे। भांजी का दर्द उनके मन को सालता रहता था। जैसे लकड़ी को अन्दर-ही-अन्दर दीमक खा जाती है, उन्हें लगता कि उस बेचारी का ग़म भी उन्हें इसी तरह खा जायेगा। इससे पहले भी उसके कई पत्र आ चुके थे जिन्हें पढ़ते-पढ़ते वे कई बार तो रो भी पड़ते थे।

अक्सर वे भांजी की यादों में इस कदर खो जाते कि लगता, जैसे पिछली सारी बातें, घटनाएं, खुशी-ग़म सब लम्हें, उनकी आंखों में तैरने लगते और वे घंटों अपने-आप से बतियाते रहते।

"रेशमा!" यही नाम रखा था उन्होंने अपनी भांजी का, जब उसके जन्म से कुछ ही देर बाद उसे उनकी गोद में डाला गया था। उसके रेशम-से सुकोमल शरीर का स्पर्श पाते ही उनके मुख से अनायास ही निकल गया था-"रेशमा!" और तब घर में सभी ने नवजात कन्या का नाम रेशमा ही रख दिया था।

लेकिन रेशमा की तकदीर में मख़मली गदेलों की गर्माहट लिखना शायद विधाता को याद न रहा था। पैदा होते ही उसकी मां चल बसी और दूधमुंहीं बच्ची को गोविन्दराम जी ने कटोरी-चममच से दूध पिला-पिला कर बड़े लाड-प्यार से पाला-पोसा था। उन्हें भांजी से इतना प्यार था कि किसी को हाथ न लगाने देते, एक पल भी उसे अपनी आंखों से ओझल न होने देते।

धीरे-धीरे रेशमा बड़ी हुई। मामा-मामी के लाड़-प्यार में उसे किसी चीज़ की कमी न थी। मामी को ही वह मां समझती थी। कहते हैं, लड़कियां जल्दी ही जवान हो जाती हैं। खाते-खेलते रेशमा कब जवानी की दहलीज पर आ पहुंची पता ही न चला। मामा जमाने की हवा पहचानते थे, दुनियां की ऊँच-नीच को जानते थे। वे अब सतर्क रहने लगे थे। मामी की तो रात की नींद ही अधूरी रहने लगी थी। वे तो चाहतीं थीं कि रेशमा को अपने आंचल में ही छिपा लें ताकि दुनियां की उस पर नज़र ही न पड़ सके। लेकिन ऐसा संभव तो न था। इसीलिए मामा-मामी दोनों ही इस बिन मां की बच्ची के जल्द-से-जल्द हाथ पीले करके, चिन्तामुक्त हो जाना चाहते थे।

और इस तरह रेशमा के लिए किसी योग्य वर की तलाश की जाने लगी। गोविन्दराम जी की भाभी लुधियाना में रहती थी। उसे भी कोई लड़का नज़र में रखने के लिए उन्होंने कह रखा था। एक दिन उसने उन्हें फोन पर बताया कि एक लड़का उनकी पहचान का है- बहुत अच्छा है, बेऐब है, खाते-पीते घर का है और अपना कारोबार करता है। रेशमा की शादी यहीं कर दो, बहुत ही सुखी रहेगी। लेकिन इतनी दूर अपने कलेजे के टुकड़े को भेजने की कल्पना-मात्र से ही उनका अपना कलेजा बाहर आ जाता और वे घबरा जाते। और भी इधर-उधर खोज-खबर की जाने लगी रेशमा के वर-घर के लिए। मामा-मामी चाहते थे कि रेशमा कहीं पास ही ब्याही जाए तो अच्छा है, शादी के बाद भी उनकी नज़र में रहेगी। लेकिन कोई भी रिश्ता दोनों को जंच नहीं रहा था और समय के साथ-साथ गोविन्दराम जी की चिन्ता भी बढ़ती जा रही थी।

उधर लुधियाना से फोन पर फोन आ रहे थे, चिट्ठी पर चिट्ठी आ रही थी। हर बार एक ही बात कही जाती कि लड़का बहुत ही अच्छा है और ऐसा रिश्ता बार-बार हाथ नहीं आता। यह सिलसिला काफी दिन तक चलता रहा और गोविन्दराम जी भी सोचने लगे कि भाभी तो अपने ही घर की है, गलत रिश्ता तो नहीं करवाएगी। आखिर उन्होंने प्रभु पर सारी डोर छोड़ दी। और इस तरह रेशमा का विवाह लुधियाना में ही कर दिया गया।

रेशमा एक बार जो डोली में बैठी, तो बस फिर ससुराल की चौखट पर ही रह गई। सास तो सास, पति भी उसका न हुआ। आए दिन ससुराल वालों की फरमाइशें होने लगी, ब्लैकमेल किया जाने लगा। आखिर गोविन्दराम जी उनकी फरमाइशें पूरी करते-करते थक-से गये। मायके में ससुराल वालों ने 15 साल तक न भेजा रेशमा को। मामी ही कभी-कभार उसे मिल जाया करती। उससे मारपीट भी की जाती। दो-चार बार गोबिन्दराम जी भी उसे लिवाने के लिए उसके ससुराल में गये, लेकिन हर बार उन लोगों ने उन्हें इस कदर बेइज्जत और ज़लील किया कि उसके बाद उन्होंने रेशमा को बस राम भरोसे ही छोड़ दिया। यही सोच कर कि जो उसकी किस्मत में होगा, देखा जायेगा। यहां तक कि उन्होंने अपना मोबाइल नम्बर भी बदल लिया ताकि फोन न हो सके।

तब से अब तक गोविन्दराम जी न जाने कितनी बार छुप-छुप कर रोये थे। बेटी की याद आने पर एक हूक-सी उनके मन में उठती और वे एकांत में चले जाते। इस बीच कितने ही पत्र रेशमा के उन्हें मिले, जिसमें यही विनती होती कि अपना मोबाइल नम्बर उसे भेज दें, बहुत ही ज़रूरी बात करनी है। आज भी उसका पत्र पढ़कर गोविन्दराम जी खून के आंसू रो रहे थे। और अंत में एक दर्दनाक फैसला लेकर कागज़ कलम हाथ में लिए वे कुछ लिखने लगे।

"मेरी बेटी रेशमा! तुम्हारे सारे पत्र मुझे मिलते रहे, लेकिन मैंने जवाब नहीं दिया जिसका मुझे भी दुख है। मैं जानता हूं बेटी, इन लोगों ने तुझे सूली पर चढ़ा रखा है। लेकिन मेरी बच्ची, मुझे इतनी तसल्ली तो है कि तूं अपने घर में जैसे-तैसै बसी हुई तो है। यह ख़त मेरा आखिरी ख़त समझना। आज के बाद यह समझ लेना कि तेरे मायके में तेरे मामा-मामी मर गए हैं। तेरे पति को परखने में हम बड़ी भूल कर बैठे बेटी, जिसके लिए हम तेरे गुनाहगार हैं। अगर हो सके तो हमें माफ कर देना। तुम्हारा मामा....।"

और फिर जैसे गोविन्दराम जी कागज़-कलम हाथ में ही लिए हुए ही.....। जैसे कोई पश्चाताप की आग में झुलस कर, थक कर, चूर-चूर होकर अपना-आप छोड़ चुका हो। उन्हें देख कर किसी के लिए यह अन्दाज़ा लगाना मुश्किल था कि वे सो रहे हैं, या या कि.....!!

ooo

कश्मीरी कहानी

अन्धेरी रात के घने जंगल में

❑ लेखक : प्रो. मजरू रशीद
अनुवादिका : रूबी मनोज

अन्धेरी रात के घने जंगल में मैं कितनी देर से भटक रहा हूं मुझे भी मालूम नहीं परन्तु यह बात मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ कि जब भी मैं अपनी टांगों पर खड़ा हुआ। मैंने आँख खोली और अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को समझने की कोशिश की तब से मैं चल रहा हूँ, बिना थके चल रहा हूँ। मेरी यात्रा जितनी लम्बी होती जा रही है उतना ही रात अपने कालेपन का तीव्र अहसास कर रही है। रात काली होना तथा इसका अहसास मेरे रोम-रोम में इस तरह गहरा फैला है जैसे कि किसी खुले मैदान में बैठे इतने कौवे कि वहां कौवों के बिना कोई चीज़ नज़र ही न आए।

घोर अन्धेरे के इस गहरे अहसास से मेरी वह पुस्तक जो मुझे मूलतः बहुत ही प्यारी है मेरे लिए अर्थहीन बन गई है। रात्रि का अन्धेरा जितना गहराता है उतनी ही काली मेरी किताब भी बन रही है।

मैं एक स्थान पर विश्राम नहीं कर सकता हूँ और निरन्तर चल रहा हूँ। कभी मैं गिर जाता हूँ, कभी मैं ठोकर खाता हूँ तो कभी ढलानों एवं खाइयों में लुढ़क जाता हूँ तो कभी-कभी छोटी बड़ी झीलों में तैरता रहता हूँ। मेरी प्यारी पुस्तक का कोई-कोई पन्ना कट जाता है या गीला हो जाता है फिर भी मैं अपनी पुस्तक को अपनी छाती के साथ लगाए रखता हूँ। इस किताब की सुरक्षा के लिए मुझे कभी-कभी टटोल कर भी चलना पड़ता है। मुझे केवल अपने हाथों पर विश्वास है क्योंकि यह रात के अन्धेरे में इर्द-गिर्द को टटोलते तथा खतरों को महसूस करते हैं। मेरे हृदय ने कभी किसी प्रकार की सहानुभूति न जताई, न किसी प्रकार की सहायता की। यह बेचारा करे तो क्या करे। यह भी तो रात के घोर अन्धेरे से काला हो गया है।

जंगल के किसी कोने पर पहुंच कर जब आँखें आकाश की ओर उठती हैं तो अनगिनत तारे दिखाई देते हैं, जो पल में नज़र आते हैं तो पल में डूब जाते हैं और कई तारे लुढ़क जाते हैं। यह तारे अपनी सारी शक्ति का प्रयोग करके जंगल को प्रकाशमान करने का प्रयत्न

करते हैं, मगर जंगल के अन्धेरे में कोई कमी नहीं कर पाते। वास्तव में इन तारों के चमकने, अस्त तथा टूट जाने से अन्धेरा और शक्तिशाली बन जाता है।

जब भी कोई तारा डूबता है या टूट जाता है तभी मैं उस परिणाम से मुड़ जाता हूँ जिसपे मैं तारे के उदय होने के समय खड़ा होता हूँ।

अपने इर्द-गिर्द को टटोलना, वातावरण को सूंघ कर अनुभव करना मेरा नियम बन गया है। मैं टटोल-टटोल कर बिना रुके चलता हूँ...। मैंने आकाश पर तारों की इस बाजीगरी के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा। यह बात भी सच है कि कोई तारा आकाश पर थोड़ी देर के लिए चमकता है। मैं इससे अपना विलाप सुनने का, इसके प्रकाश के तले अपनी पुस्तक के अक्षर पढ़ नहीं पाया। इस किताब को वहन करने-करते मैं थक गया हूँ, चूर हो गया हूं पर इस पुस्तक को अपने से विमुख करने को भी जी नहीं करता क्योंकि मेरा होना इसी से सम्भव है और इसके होने से मुझे अपने अर्थहीन होने का अहसास होता है क्या मैं यह किताब कभी पढ़ सकता हूँ? मैं इसके बारे में कुछ कह नहीं सकता परन्तु मुझे यह तीव्र अहसास है कि मैं इस पुस्तक का अक्षर-अक्षर पढ़ता हूँ।

रात लम्बी होती जा रही है। अन्धेरा बढ़ जाता है, तारे चढ़ते हैं डूबते हैं और लुढ़क जाते हैं मगर ऐसा कोई प्रकाशवाला तारा नहीं उभर आता जो रात के घोर अन्धेरे पर विजय पाता और मैं अपनी पुस्तक अक्षर-अक्षर तथा शब्द-शब्द पढ़ता किन्तु रात और इसका अन्धेरा निरन्तर अपने समस्त बल का प्रदर्शन करता है। मैं प्रतीक्षा करता हूँ और मुझे लगता है प्रतीक्षा मेरा भाग्य बन चुका है। मुझे लगता जो मेरी प्रतीक्षा तक ही सीमित रहेगा। मुझे चलना है, निरन्तर टटोल-टटोल कर क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई और उपाय भी नहीं।

मैं उस समय खौफ और डर से कांप उठता हूँ जब आस-पास के बहशी जानवर चिल्लाते हैं। मैं कभी-कभी पेड़ों के पीछे छुपने का प्रयत्न करता हूँ तो कभी पेड़ों के कोटरों में छुपता रहता हूँ किन्तु मैं अपनी पुस्तक को छाती के साथ लिपटा कर रखता हूँ। जब मुझे महसूस होता है कि कोई जानवर मेरे समीप आ रहा है और मुझे वह अभी निगल लेगा। मैं उसी समय शुतरमुर्ग की भाँति अपना सिर छुपाने का प्रयत्न करता हूँ..किन्तु कब तक?

ooo

नवांकुर

मैं मोती कब बनूंगा

❑ मंजू बाला

दादा-दादी, माँ-पापा आयुश को हमेशा कहते हैं कि ''लगन से किया परिश्रम कभी बेकार नहीं जाता....मेहनत का फल भले ही देर से मिले...मिलता अवश्य है...।'' आदर्श परिवेश में पला वह पढ़ने में होशियार ही नहीं, कक्षा में भी प्रथम आता। मां कहती ''बेटा ज़िन्दगी में कुछ पाने के लिए सुखों को त्यागना ही पड़ता है....देखना तेरी यह लगन एक दिन तुझे बहुत बड़ा आदमी बनाएगी....।'' ऐसी बातों से उसकी शक्ति दुगुनी हो जाती...कुछ कर दिखाने का जोश और भी बढ़ जाता। परिवार को ही नहीं उसे भी विश्वास था कि एक दिन वह अपनी मन्ज़िल पर अवश्य पहुंचेगा।

उम्र के बत्तीस वर्ष बीत चुके हैं...उच्च शिक्षा की सारी डिग्रियां हाथ में हैं...प्रतियोगी परीक्षाओं के प्रमाण-पत्रों की कमी नहीं है.....किन्तु आज भी वहीं-का-वहीं खड़ा है...एक अच्छी नौकरी की तलाश में...। कुछ दिन पहले पढ़ाई की बात चली तो पिता ने कहा ''बेटा! सुना है गाँव का राम गोपाल प्रोफेसर बन गया...तेरी तरह वह भी बहुत मेहनती था...पर उसे तो छोटी उम्र में ही नौकरी मिल गई थी...उसने लेक्चरार बनने के बाद ही पी.एच.डी. की थी...। आज क्या नहीं है उसके पास...धन-दौलत, इज्ज़त-मान सब कुछ...तुम अपना मन छोटा क्यों करते हो?...देखना इस बार चुनाव सूची में तुम्हारा पहला नंबर होगा...मेरा बेटा क्या राम गोपाल से कम है...।'' वह भी तो यह सपना पूरा करना चाहता है पर क्या करे...डाक्ट्रेट की डिग्री पाकर भी उसके हाथ खाली हैं। अब तक शादी नहीं की...मां ने कितनी बार कहा ''उम्र निकल जाने पर रिश्ता अच्छा न मिलेगा...। पर लड़की वाले भी तो नौकरी का पूछते हैं....लड़का क्या करता है...कितना कमाता है...? इस लिए अब मन बना लिया था कि सरकारी नौकरी चाहे 'फोर्थ क्लास' की ही होगी वह कर लेगा... कम-से-कम किसी प्राईवेट संस्था में काम करने से तो अच्छी ही होगी...किन्तु वर्षों से साथ चली आ रही अच्छी नौकरी यानी लेक्चरर बनने की उम्मीद अभी भी शेष थी शायद...पिछले चार महीनों से वह ठीक से सो नहीं पा रहा था...अजीब से परेशानी उसे घेरे रहती....कभी-कभी तो वह सोचता कहीं उसका मानसिक सन्तुलन तो नहीं बिगड़ रहा....। शायद जिस सुनहरी भविष्य का सपना उसने 'लेक्चरर' बनने के रूप में संजोया था, उसका निर्णय होने वाला था। वह बेचैन था क्योंकि

---

* *विजेपुर, वार्ड नं. 8 जम्मू मोबाईल : 09519232630*

उसके ऐसे ही सपने कई बार टूट चुके थे। आज तक उसने क्या-क्या नहीं सहा था....पिता मामूली क्लर्क और उन पर पूरे परिवार का बोझ...फिर भी उसकी पढ़ाई के लिए होने वाले खर्चों में कभी कंजूसी नहीं की...उनकी आँखों में बेटे के सपने भरे थे...उन सपनों को वह हकीकत में देखना चाहता था।''

आज सुबह-सुबह उसके दोस्त का फोन आया कि ''सिलेक्ट लिस्ट निकल गई है।'' उसे मन में झटका-सा लगा..बोला ''....मेरा सीरियल नंबर निकला है?...तुम्हारा नाम नहीं है...तुम्हारी सिलेक्शन नहीं हुई है...।'' दोस्त इतनी आसानी से...सीधे-सीधे कैसे कह सकता है...तुम्हारा नाम नहीं है...शायद वह मज़ाक कर रहा है...उसे बात को घुमा-फिरा कर कहने की आदत है...मैं खुद अख़बार में देखूंगा...।'' किन्तु अन्दर से शायद वह टूट गया था। हड़बड़ाया हुआ अखबार लेने भागा...समझ नहीं रहा था कहां जाए, किससे कहे, किससे पूछे...मेरी ''सिलेक्शन' क्यों नहीं हुई...मैंने अच्छा इंटरव्यू दिया था...मैं 'मैरिट लिस्ट' में था फिर भी...मेरे जुनियर्स भी 'सिलेक्ट' हो गए...पर मैं...।

ऐसे असंख्य प्रश्न उसे पागल बना रहे थे...दादी अक्सर कहती थी ''बिंध गया सो मोती, रह गया सो पत्थर''...सारे तो बिंध गए...पर मैं...मैं मोती कब बनूंगा...। प्रश्नों के घेरे से निकल कर एक फिर अखबार में अपना नाम ढूंढने लगा....देखने में गलती भी तो हो सकती है...। बौखलाया हुआ वह एस. सी. बी. सी., ओ. बी. सी., एम. टी. आदि श्रेणियों में अपना नाम ढूंढने लगा कि कहीं गलती से इनमें न आ गया हो।

ooo

समकालीन हिंदी कविता में नारी

❑ डा. मृत्युंजय उपाध्याय

आचार्य शुक्ल जी ने 'कविता क्या है' में कहा था कि जीवन जितना जटिल, उलझनपूर्ण होता जाएगा, कवि-कर्म उतना ही कठिन होगा। आधुनिक युग में नाना प्रकार की जटिलताएँ हैं, तनाव हैं, द्वंद्व हैं, आर्थिक दबाव हैं। उसमें पिसता जीवन चैन की साँस भी नहीं ले पाता। फलतः समकालीन कविता में इसकी अभिव्यक्ति होती रहती है। आधुनिकता और समकालीनता प्रारंभ से ही विभिन्न रूपों में पारिभाषित होते रहे हैं। आधुनिकता एक व्यापक दृष्टिकोण है, जिसमें काल-सीमा का विस्तार है। समकालीनता है अपने समय से संपृक्त और इसे 1960 से प्रयुक्त किया जाने वाला मुहावरा माना जाता है। रघुवीर सहाय समकालीनता को स्पष्ट करते हैं।

''मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। भविष्य के प्रति, नियति के प्रति नहीं। जो जीवन की अन्य अभिव्यक्तियों में समकालीनता है, कविता में समकालीनता भी वही है।''

आज के रचनाकार में सजगता है। सामयिक स्थितियों, घटनाओं और दशाओं से वह रू-ब-रू ही नहीं करता, उसे यथार्थ की वाणी देता है। उसकी रचना में उसका अनुभव कल्पनाजन्य न होकर यथार्थपरक है। युग के प्रति उनकी प्रतिक्रिया अनेक दिशाओं में मुखरित ही नहीं होती, वह तटस्थ रहकर अपनी पीड़ा और क्रांति-चेतना को अभिव्यक्ति का आकार देता है।

समकालीन कवियों की दृष्टि सामाजिक विषमता के जिस पक्ष की ओर रही है, वह नारी है। सच पूछिए, तो स्त्री-विमर्श समकालीन कविता की मूल चेतना है। वहाँ नारी जीवन के प्रत्येक पहलू, उसकी सामाजिक स्थिति, उसकी समस्याओं, उसके संघर्ष, द्वंद्व के अनावृत्त करने का प्रयास हुआ है। यह एक सुखद प्रसंग है कि स्त्री विरोधी बर्बर ग्रंथि का प्रत्याख्यान पुरुष कवियों ने ईमानदारी से किया है। यह एक बयान-भर न होकर स्त्री के प्रति नई मानवीय संवेदनाओं की पुनर्प्रतिष्ठा है।

'सपनों का बाजार' (प्रभात पाँडेय) में ज़िंदगी की विभिन्न परतें गुँथी हुई हैं, जो हमें आकांक्षाओं की दुर्गम व भयावह दुनिया में ले जातीं हैं। यह भयावहता चारों ओर बाजारों के चकाचौंध के कारण है। पर उनमें कुछ भी पाना मुश्किल है। उनकी आँखों में सपने पलते

---

* *वृन्दावन, मनोरम नगर, लूबी सर्कुलर रोड, धनबाद-826001, झारखंड, दूरभाष 0326-2205928*

हैं, चमकते हैं, फिर मुरझा जाते हैं। पूरा बड़ा जनसमुदाय पथराई आँखों से सब कुछ देखता रहता है। ''पसरा होगा उसी के साथ/आँचल भी/वहीं कहीं खट-खट-खट-खट या नए युग की आहट।'' फिर एक स्त्री की स्थिति जिसमें विवशताजन्य दयनीयता है। ''अभी-अभी गुजरा है मेरी बगल से ऊँची एडी का सैंडिल/और न जाने क्यों उस बुर्का ओढ़ी औरत ने/झट से उठा लिया/अपनी बच्ची को गोद में।''

द्वंद्वात्मकता की सामाजिक विकास में भूमिका रहती है सबसे कमजोर वर्ग के साथ रहना। यह उसका दायित्व भी है, कर्त्तव्य भी कि वह यथास्थिति, जड़ता से संघर्ष करें। इसी तथ्य की रोशनी में अरुणकमल की कविताओं में कमजोर समझी जाने वाली शोषित स्त्री का चित्रण है। यह विचित्र विपर्यय है कि अनेक नारावादी आंदोलनों के बावजूद उसकी हालत बेहतर नहीं हो पाई है। स्त्री शिक्षा की घोषणाएँ भी अर्थहीन साबित होती हैं। नारी दासता का मार्मिक चित्रण यहाँ ध्यातव्य है।

''और एक दिन सबके सामने/मेहमानों और घर के लोगों के सामने/मैंने उसे बुरी तरह डाँटा/फिर भी वह कुछ नहीं बोली/रोई भी नहीं/अभी भी मैं समझ नहीं पाया/कि न कभी बोली/क्यों नहीं मरते वक्त भी वह कुछ नहीं बोली/.....वह कभी बोली क्यों नहीं, एक बार भी बोलती'' ('सबूत संग्रह में' 'एक बार भी बोलती' कविता) जब घर, परिवार में पति, पुत्र, पुत्री के समक्ष उसका कोई बजूद नहीं है, तो चुप रहने की उसकी विवशता है। देवी प्रसाद मिश्र स्त्री की व्यर्थता, अनुपस्थिति को गहरी व्यंजना देते हैं सरल भाषा में। ''वह प्याज की तरह कहीं ढनगी होगी/तिलचिट्टे की तरह कहीं दुबकी होगी/चटनी की तरह पिस रही होगी/वह तेल की तरह उबल रही होगी/उसमें घर की जरूरी सब्जी पक रही होगी/वह घर में ही होगी।'' ('प्रार्थना के शिल्प में नहीं' संग्रह की कविता 'मेहरारू घर में नहीं दिखती)'।

शोषण की चक्की में पिसकर उसमें बोलने की शक्ति नहीं रह जाती है। जीते जी समाप्त हो जाती है। वह झुकने और निरंतर झुकते जाने को अपनी नियति-जन्य विवशता मान चुकी है। मसलन, वह झुकती जाती है। देह को गलाकर अपना वजूद मिटाने को विवश है। शोषण की तीव्रता का संवेदनापूर्ण चित्र इस प्रकार है।

''तुम कितना झुकागी,/देह को कितना मरोड़ोगी।
घर के छोटे दरवाजे में/तुम फिर गिर जाओगी।
कितनी कमजोर हो गई हो तुम/जामुन की डाल-सी
भौजी, हाथ में डोल लिए मत जाना नल पर पानी भरने।''

जामुन की डाल की तरह कमजोर होना स्त्री का समाज के लिए कितना बड़ा कलंक है कि ननद उसे पानी भरने से मना कर रही है। कमजोरी के कारण।

समाज पर उत्तर आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट है। बैद्रीआँ ने 'कंज्यूमर सोसाइटी तथा रिपब्लिक एक्सचेंज ऐंड हेथ' ऐसी किताबों के द्वारा जिस समाज को रेखांकित किया है, उसको

प्रमुख विशेषता उपभोगवाद है। इस समाज में हम गुलाम बनते हैं छवियों की छलनाओं के और शाश्वत असंतुष्ट उपभोक्ता बनकर अति यथार्थ की दुनिया में जीने लगते हैं। मानव मात्र बन जाता है उपभोक्ता और मानव-संबंध आधारित रह जाते हैं वस्तुओं पर। सामाजिक सम्मान का आधार वंश, जाति, धर्म न रहकर मनुष्य का उपभोक्ता स्तर रहता है। उपभोक्तावादी संस्कृति में सैक्स व्यापार का अस्त्र बनता है। फलत: नारी का शोषण पग-पग पर बढ़ता है। नारी को वस्तुओं की बिक्री के लिए व्यक्तित्वहीन मॉडल बनाकर पेश किया जाता है, जिससे वह भयंकर रूप से सुंदर चित्रित की जा सके। उपभोक्तावादी संस्कृति का व्यापक प्रभाव, पुरुषों से आगे बढ़ने की तीव्राकांक्षा, अकेलेपन की त्रासदी और इसके बीच नारी की स्थिति को रघुवीर सहाय ने बड़ी शिद्दत के साथ अनुभव किया है 'धुविया? जल बिच मरत पियासा' की तरह। सब कुछ पाकर भी कुछ ना पाना।

''वह अपने तीस बरस/औरत और व्यक्ति बनने के बीच तीस बरस/लिए हुए रोज यहाँ आती है वक्त से/ध्यान से सुनती है नौजवान ग्राहक को/खो नहीं जाती स्वप्न में।''

पुरुष के प्रति तीव्राकर्षण पर तटस्थता, भावहीनता। पुरुषों को देखना-''कटे-पिटे चेहरों पर लालच लिए हुए/खिड़की से झाँकते।'' लालची पुरुषवृत्ति की गीध दृष्टि, नोच लेने की तत्परता। खिड़की में झाँकने से औद्योगीकरण के प्रभाव से बदली सामाजिक स्थिति का यथार्थ व्यक्त होता है। मेज पर रखी पृथ्वी किसी के लिए खिलौना भले हो और वह खेलता रहे उससे अजूबा खेल, पर स्त्री मौन सहती रहती है सब कुछ पृथ्वी की तरह। स्त्री रहती है सहिष्णु और पुरुष उसका खून पीकर खूँखार होता जाता है।

''मैंने उसके हाथों में सौंपा/मानसून के आने का सही महीना/स्त्री थी वह सदियों पुरानी/अपने पेट में पड़े आदिम वीर्य के मोह में/उसने असंख्य समझौते किए/मैं उसका लहू पीता रहा सदियों और दिन-ब-दिन और खूँखार होता रहा....(आशय, अक्तूबर 04-जून-05 में 'स्त्री थी वह' : विमलेश त्रिपाठी) रजनीकांत पांडेय 'वनकन्या' कविता में स्त्री की विवशता और जिजीविषा को एकसाथ रेखांकित करते हैं-''अधबुझी आग को धधकाकर/चीर देना चाहती है वह/अपनी हथेली पर उगी/विवशता की लकीरों को/जन्म से आज तक/पल-पल मरती टूटती/बिखरती पहचान को/भस्म पर उठा देना चाहती है/धुएँ के साथ।'' (आशय, वही) लड़की का ठंडी राख पर शोलों का गीत लिखना और पहाड़ों के प्रतीक पढ़ना उसकी सीमा और शक्ति के अहसास का बयान है। विषमता-विपरीतता में जूझने की हिम्मत का भी।

उधर श्रीकांत वर्मा ('माया दर्पण') पुरुष की मानसिकता और नारी की तत्कालीन सामयिक स्थिति को पहचानने का सार्थक प्रयास करते हैं। पुरुष की रूग्ण मानसिकता नारी को भोगवादी नजरिए से ही देखती है। उसकी दृष्टि में यही है स्त्री का सही उपयोग। '(एक दिन) क्या मैं एक स्त्री के लिए/नकली तमंचा लिए विस्तर पर लूँगा/अवतार? क्या मैं उस स्त्री से/फिर से रचाऊँगा विवाह?....प्रेमिका मृत्यु का पर्याय है हर मोड़ पर/प्रेमिका की तरह/मृत्यु खड़ी होती है।'

सामंतवाद स्त्री देह का उत्सवीकरण करता है। बाजारवाद उसका व्यावसायिक इस्तेमाल। स्त्री मुक्ति को देह की मुक्ति में समाहित कर देने के पीछे कहीं देह की मुक्ति को स्त्री मुक्ति का वर्चस्वशाली मुद्दा बना देना तो नहीं है, जिसके पीछे व्यवस्था बाजारवाद और मर्दवाद की साजिश है। 'काठ की घंटियाँ' में नारी का यह मौन समर्पण शायद इसीलिए है।

''आपरेशन थियेटर सी/जो हर काम को करते हुए भी चुप है/भारी पीले फूल-सी/जो डाल पर झुक गई/प्यार का नाम लेते ही/बिजली के स्टोव सी/जो एकदम सुर्ख हो जाती है।''

जब तक लकड़ियां गीली हैं, धुआँ देंगी, पर इसमें उनका क्या वश है? वे लाचार हैं। लड़की का सहज स्वीकार है ''हम पतीलियाँ हैं/तुम्हारे घर की भाई-पिता/माँ देखो हम पतीलियाँ हैं।'' (असद जैदी : बहनें) उनके प्रति नकार, व्यर्थता, पशुता का भाव पग-पग पर मिलता है। क्या समाज की व्यवस्था ऐसी है या फिर पुरुषसत्तक समाज का दर्प, अहंकार ऐसा कराता है या फिर बाजारवाद? चंद्रकांत देवताले 'बाल ककड़ी बेचने वाली लड़कियाँ' में ऐसा ही भाव व्यक्त करते हैं कि उन्हें भेड़ समझा जाता है और यों ही खदेड़ दिया जाता है।

''.....ये भेड़ों-सी खदेड़ी जाएंगी/याद नहीं आएँगी/किसी को लड़कियाँ सात/कितने अंधेरे उठी होंगी/चली होंगी कितने कोस?'' लीलाधर जगूड़ी नारी की श्रमशीलता को महत्त्व देते हैं। उनके लिए नारी का संपूर्ण सौंदर्य उसके श्रम में निहित है। उसका किसी धुन, लगन में लगे रहना उसे सुंदर बनाता है।

वे स्त्रियाँ सुंदर होती हैं जो निकम्मी नहीं होतीं
जो स्त्रियाँ सुंदर होतीं हैं वे हमेशा किसी धुन में रहती हैं

'जमीन पक रही है' (केदारनाथ सिंह) कविता स्त्री की सजीव उपस्थिति को और कविता के बाहर उसकी निर्मम विडंबना को आधार बनाकर एक नए अनुभव का सृजन करती है। स्त्री, जो कविता को ध्वस्त करती है, एक चुनौती है। ''उसके आगे कोई पंक्ति नहीं थी/कोई शब्द नहीं था कविता में उसके आगे/सिर्फ स्त्री थी/जो पूरी की पूरी अब कविता के बाहर खड़ी थी/और कविता को ध्वस्त कर रही थी।''

कॉर्ल रोजर्स ने अपनी एक कविता का हवाला देकर बताया है कि दांपत्य (स्त्री-पुरुष दोनों, उनके रिश्ते) किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं करता। उषाकालीन उगते सूर्य के सौंदर्य को हम अपलक निहारते नहीं अघाते बिना किसी अपेक्षा के। उसी प्रकार स्त्री जो है, जैसी है, पूर्ण है उसमें कोई अपेक्षा और संभावना रखना उसे अवमूल्यित करना है। विनय दुबे की 'जो है अपने होने के अलावा' कविता (तद्भव, फरवरी 05) देखी जा सकती है।

''एक स्त्री जिसे मछली होना चाहिए था
वह एक स्त्री ही है मछली नहीं है

० ० ०

उपभोक्ता संस्कृति, बाजारवाद को चाहिए स्त्री की मानक देह, जो आकर्षक हो, रमणीय लगे। परंतु विपरीत हालत उन्हें निराश करती है। निराशा तैयारी की भूमिका बनती है कि वे अपने को संतुलित और आकर्षक बना पाएँ। बना कितना पाती है? यह भी प्रकट हो जाता है-''खाने में ही नहीं और भी जो कह दिया जाता/अपने भीतर रख लेतीं वे उसे''-फिर मानक देह बनने का स्वप्न ही व्यर्थ है। सर्वेंद्र विक्रम की कविता तैयारी का पहला ही अवतरण ध्यातव्य है।

''मानकों पर खरे नहीं थे उनके शरीर/पारंपरिक सी बनावट, चेहरे/बहुत पास से भी साफ समझ में नहीं आते थे। धुंध थी, भ्रम हो जाता कि वे वहाँ हैं भी या नहीं।'' (तद्भव, फरवरी 5, उपर्युक्त दो उद्धरण) ऐसी देह मानकों पर खरी उतरे कि उपयोग के लिए तैयार हो जाएँ मॉडल, ग्लैमर गर्ल, नायिका या और कुछ। पत्नी बनने में भले ही पहले नाज-नखरे हों पर बाद में सब चलता है, चाहे वे जैसे रहें। अज्ञेय की 'रोज' कहानी एक स्त्री के दैनिक जीवन की एकरसता, नीरसता, उदासीनता को उद्घाटित करती है। उसी प्रकार 'एक स्त्री' का रोजनामचा (अनिल त्रिपाठी) दैनिक जीवन और गृहस्थी के पहाड़ को अपने घुटनों से ठेलती हुई स्त्री की कहानी है, जो अपने शिल्पगत वैशिष्टय के कारण नहीं, अपितु अपनी संवेदनात्मक भंगिमा के कारण अपने आसपास की ज़िंदगी का प्रामाणिक अनुभव बन जाती है। पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था का वह जालिम आलम है कि वह अपनी मूक और समर्पित निष्ठा से उसकी मान्यताओं को सहज ही स्वीकार लेती है। कारण, उसका कर्त्तव्य-निर्धारण उसकी सहज स्वाभाविक इच्छा के एकदम प्रतिकूल है।

''लगा लें/जल्दी-जल्दी झाड़ू और पोंछा/कि कहीं कोई आ न जाए/ और तुम्हारे एक कमरे की/तख्ती पर पहला ही हर्फ/देर से लिखा जाए/अभी सो रहा है तुम्हारा बच्चा/इसलिए निपटा लो कुछ काम / ताकि बिना चिड़चिड़ाए/दे सको उसे दूध और बिस्कुट।''

स्त्री-विमर्श की मूल चेतना है पितृसत्ता एवं पुरुष वर्चस्व का विरोध। यहीं से प्रारंभ होता है उसका संघर्ष। अर्चना वर्मा ठीक ही कहती है-वह समाज के हर समूह में सुविधा संपन्नता के पैमाने पर देखें, तो लघुत्तम से उच्चतम तक तथा सामाजिक समूहों के पैमाने पर देखें तो सारी देशिक, प्रादेशिक, भाषिक, धार्मिक, जातीय सामूहिकताओं की हर इकाई में, वंचित की हैसियत से मौजूद है और स्त्रीवादी आंदोलन उसे अन्य सारी अस्मिताओं के आर-पार एक विराट वैश्विक समूह में संगठित करने का अभिलाषी है। (अर्चना वर्मा : स्त्री-विमर्श कथा यथार्थ और भाषा संवेद, अप्रैल 06) पंकज सिंह 'स्त्री में' उसकी उदासीनता और विवशता को मार्मिक स्वर देते हैं-''दिखाई देती हैं सुबह से ही उसकी थिराई उदासियाँ/नहीं कहीं सघन होती हिंसा उसके ऊबे क्रियाकलाप में/जो उसी को खाती है हर रोज खाती है खाती है।'' (संवेद अप्रैल, 06) अजित कुमार की 'ब्याह की शाम' में नारी मन की कोमल, सुमधुर अनुभूतियों को संवेदना के साथ प्रत्यक्ष किया गया है-लोक-लज्जा से बँधा तन रोक

देगा पथ तुम्हारा/काम करने को बढ़ेंगे चपल चरण अधीर। मृत नहीं (धर्मवीर भारती) में नारी का एक भव्य, पवित्र रूप दृष्टिगत होता है-''प्रात: सद्य:स्नात/कंधों पर बिखरे केश/आँसुओं में घुला ज्यों वैराग्य का संदेश।'' परंतु ऐसी कविताएँ विरल हैं।

अनामिका स्त्री के कुछ चित्र उभारती हैं, जिसमें एक चित्र है एक औरत का अपने बच्चे को फोन पर कहना 'सबसे ज़्यादा याद आ रही है तुम्हारी' (एक औरत का राजकीय प्रवास, संवेद, अप्रैल 06), 'तुम हो मेरे सबसे प्यारे' (वहीं)। यही कथन प्रिय और माँ को कहा जाता है। खंडित भक्ति, खंडित विश्वास कोई अर्थ नहीं रखता। खुदा के दरबार में यह आरोप लगता है उस पर और वह कलम रखकर कहते हैं 'औरत है, उसने यह गलत नहीं कहा।' औरत के इस कथन और खुदा के फैसले पर नारी जीवन की अकथ कथा है। ऐसी कथा, जिसे वह वाणी नहीं दे पाती। 'पतिव्रता' (अनामिका, संवेद 14) पति से बार-बार पिटती है, ज़ार-ज़ार रोती है। फिर गाँधी के सत्याग्रह पर लौट आती है, पर उस जालिम को परवाह कहाँ है उसके भूखे रहने की। हारकर और धीरे-धीरे खुद ही काढ़कर/खाती बासी रोटियाँ/थोड़ा-सा लेकर उधार नमक आँखों का।'' समर्पण-ही-समर्पण।

प्रेम निरंजन एक क्षणिका में स्त्री की सीमा, विवशता पर मारक टिप्पणी कर देते हैं- ''विज्ञापन में स्त्री/गोश्त की दुकान पर जैसे/चिड़ियों की तसवीरें।'' (हैसियत, समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2005) क्या विडंबना है कि स्त्री को जबरन जलाकर सती बनाया जाता है, फिर वहीं उसके जलने का उत्सव होता है/''मेला लगता है वहाँ/जहाँ स्त्री जली थी/स्त्री ही बदल सकती है/बदलने दे सकती है/अपने जलने के उत्सव को।'' (वढ़ावा : प्रेम निरंजन, उपरिवत्)!

'बीज से फूल तक' (एकांत श्रीवास्तव) में उमा की कहानी महिला समाज की एक करुण दुनिया सामने लाती है। महिलाओं के हरहराते, उद्याम वेग से लहराते बचपन के बाद विवाह की पवित्रता से रची-बसी महिलाओं का जो हश्र होता है यानी उसे किसी-न-किसी रूप के सामंत के साथ ही बँधना होता है चाहे वह शराबी हो, अय्याश हो, अफसर हो, व्यापारी हो, एक्जेक्यूटिव हो, राजनेता हो, फिर शारीरिक या मानसिक तौर पर दंपति की मार से पड़े नीले निशान लगातार बढ़ते जाते हैं ज़्यादा-से-ज़्यादा-''एक दिन वह तलाक के कागज़ात पर हस्ताक्षर करती है/और गृहस्थी की चौखट से/बाहर आ जाती है सड़क पर काम की खोज में/परंतु दयनीय और करुण हो जाती है स्थिति अंत तक/मगर उमाएँ हो जाती हैं अधिक असहाय।'' तलाक से वह पुरुष की वर्चस्ववादी संस्कृति पर प्रहार करती है। महिलाएँ पूरी सामाजिक संरचना के विरुद्ध खड़ी हो रही हैं-चाहे वह आर्थिक मामला हो, संपत्ति का अधिकार हो और व्यक्तिगत जीवन का प्रश्न हो।

जहाँ स्त्री की विवशता, दयनीयता, सीमा अंकित है, वहीं उसका संघर्षशील चेहरा सामने आता है। मूल्य-परिवर्तन के साथ उसके स्वरूप, स्वभाव में भी परिवर्तन आया है। बाज़ार में वह अपना 'स्व' सिद्ध करती है, तो उस ओर उसका रुझान स्वाभाविक है भले ही इसे

नारी-विमर्श के खाते में डाला जाए। नारी की सम कम, विषम स्थितियाँ अधिक स्थान घेरती हैं कविता में। परंतु उनकी सहनशीलता के साथ आक्रामकता में वृद्धि हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सपनों का बाजार : प्रभात पाँडेय, प्रतिध्वनि 2002, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट, कोलकाता 700007.
2. आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता : डॉ. चमनलाल गुप्त, साहित्यावलोकन, 2005 संपादक डा. राज शर्मा, हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर (पंजाब)।
3. सबूत : अरुणकमल
4. माया-दर्पण : श्रीकांत वर्मा
5. बहनें : असद जैदी
6. बाल ककड़ी बेचनेवाली लड़कियाँ : चंद्रकांत देवताले
7. मृत नहीं : धर्मवीर भारती
8. ब्याह की शाम : अजित कुमार
9. प्रार्थना के शिल्प में नहीं : देवी प्रसाद मिश्र
10. बौद्रीऑ : कंज्यूमर सोसाइटी
11. बौद्रीऑ : सिंबालिक एक्सचेंज ऐंड डेथ
12. काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
13. जमीन पक रही है : केदारनाथ सिंह
14. यथार्थ यथास्थिति नहीं : रघुवीर सहाय, संपादक डॉ. सुरेश शर्मा, वाणी प्रकाशन, 21ए दरिया गंज, नई दिल्ली-110002
15. आशय, संपादक विनोद कुमार सौनकिया, दिगंत प्रकाशन, के-1/1540, आशियाना, लखनऊ
16. तद्भव, संपादक अखिलेश, 18/201, इंदिरा नगर, लखनऊ, 226016.
17. संवेद : किशन कालजयी बी-3/44, तीसरा तल, रोहिणी, दिल्ली-110085.
18. स्त्री : पंकज सिंह,
19. एक औरत का राजकीय प्रवास : अनामिका
20. सृजनपथ, संपादक, रंजना श्रीवास्तव, सिलीगुड़ी (पश्चिम बंगाल)।
21. हैसियत : प्रेम निरंनज समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून, 2005
22. बढ़ावा : प्रेम निरंजन, उपरिवत्।
23. बीज से फूल तक : एकांत श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002

ooo

काश्मीर शैवदर्शन और शिवसूत्र

❑ डा. रमा शर्मा

आचार का प्रेरक विचार हुआ करता है। मानव के सर्वाङ्गीन व्यक्तित्व-निर्माण में मूल-आधार आचार ही होता है, विचार ही होता है। विचारणा-शक्ति ने संवेदनशील एवं विवेकशील मनुष्य की प्रवृत्ति एवं दृष्टि को दर्शनोन्मुखी बनाया। दार्शनिकता चिन्तनमूला है। सांसारिक परिधि रूपी सीता-कुटीर में क्लेशबहुल रावण लक्ष्मण रेखा को अतिक्रान्त कर चुका है। अनुभव और चिन्तन ने मनुष्य को दार्शनिक तीर पर पहुंचा दिया है। भारतीय दार्शनिक प्रक्रिया बौद्धिक एवं यौगिक क्रीड़ा मात्र नहीं, चिन्तन क्रिया मात्र नहीं अपितु सदा से ही शिव की कृपा-पात्र रही है। जीवन के तथ्य एवं तत्त्व, सत्य एवं महत् तत्त्व आध्यात्मिक चिन्तन के उत्स रहे हैं। वैदिक एवं वैदिकेतर विचार-पद्धति की चरम परिणति न्याय सांख्य योग वैशैषिक पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा के रूप में हुई। बौद्ध, जैन, चार्वाक के साथ तन्त्र पर आधारित शैव, पाशुपत आदि तान्त्रिक दर्शनों का भी उदय हुआ।

महेश्वर-सम्प्रदाय पाशुपत, शैव, कालामुख तथा कापालिक इन चुतर्विध रूप में 'ब्रह्मत्व' को आविर्भूत करते हैं। गुजरात एवं राजपूताना में पुष्पित और पल्लवित हुआ 'पाशुपत दर्शन'। तमिल प्रदेश में शैवदर्शन को प्रोत्साहन मिला। 'वीर शैवदर्शन' ने कर्नाटक में बलवत्ता प्राप्त की। कश्मीर की परमपावना एवं पुनीता धरती पर आध्यात्मिक प्रयोग के रूप में प्रत्यभिज्ञा शास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा त्रिक दर्शन गूढ़ सिद्धान्तों को अनवगुंठनवान् करने में दार्शनिक साधक सतत प्रयासशील रहे हैं, साधनारत रहे हैं और साधनापथ को प्रशस्त करते चले आ रहे हैं। सर्वार्थसाधिका साधना स्वार्थमूला न होकर परार्थसिद्धि में तत्पर रही है। दार्शनिक जगत् की भागीरथी की प्रथम धारा शिवसूत्रों के रूप में आचार्य वसुगुप्त के भागीरथ प्रयास का प्रतिनिधित्व करती हुई अजस्र धाराओं का स्रोत बनी हुई है।

तन्त्रमूलक होने से दाक्षिणात्य शैवदर्शन तांत्रिक दर्शन के रूप में प्रख्यात है जबकि कश्मीर शैव-दर्शन अद्वैतपरक अन्वेषणा एवं गवेषणा की एषणा को संतृप्त करता है। दक्षिण भारत २८ शैवागमों से सुसम्पन्न हैं और 'काश्मीर-शैवदर्शन' ६४ शैवागमों को गौरव प्रदान करता है। दक्षिण शैवागम में से शैवागम द्वैतोन्मुखी है। अठारह आगम द्वेताद्वैत दृष्टि लिए हैं। काश्मीर - शैव दर्शन के भैरवागम अद्वैतमार्त्तण्ड के प्रकाश से प्रकाशित हुए हैं। शैवदर्शन का अद्वैतवाद ही 'काश्मीर-शैव-दर्शन है, त्र्यम्बक दर्शन है, त्रिनेत्रतन्त्र है। वैदिक धर्म के प्रति आस्थावान् काश्मीर-शैव-दर्शन आगम के विशुद्ध रूप की आभा बिखेरता है।

कश्मीर में पुष्पित एवं पल्लवित शैवदर्शन के आदि प्रवर्त्तक 'त्र्यम्बकादित्य' हुए। सोमानंद, उत्पल, अभिनव-इन प्रमुख आचार्यों ने काश्मीर-शैवदर्शन के सिद्धान्तचन्द्र की चन्द्रिका ने द्वैतध्वान्त के विनाश के लिए सतत प्रयास किए और सोमानन्द की 'शिवदृष्टि' अद्वैतमार्त्तण्ड के रूप में सौर्यमण्डल समकक्ष। उत्पल की प्रत्यभिज्ञाकारिका कश्मीर-शैवदर्शन का प्रमुखतम ग्रंथ है। अभिनवगुप्त का 'तन्त्रालोक' लोक में तन्त्र का आलोक फैला रहा है। कश्मीर-शैवदर्शन साहित्य एवं सिद्धान्त की दृष्टि से एक परिपूर्ण दर्शन है। इस दर्शन की प्राचीन प्राचीर, आधारस्तम्भ 'शिवसूत्र' ही है। शिवसूत्रों से पूर्व काश्मीर शैवदर्शन का एक परिपूर्ण अस्तित्व अस्मितापूर्ण रहा है। प्राचीनकाल में शैव-दर्शन के पुनरोद्धार में प्रवृत्त कैलाशपर्वत के आचार्य श्रीकण्ठनाथ द्वारा प्रेरित दुर्वासा ऋषि के शिष्य त्र्यम्बकादित्य हुए। उन्होंने इस दर्शन के उपदेश के क्रम का सतत, कर्मठ उपक्रम किया। त्र्यम्बकादित्य की १६वीं पीढ़ी में संगमादित्य हुए। अष्टम् शताब्दी में वह कश्मीर में वास करने लगे। काश्मीर-शैवदर्शन की पृष्ठभूमि शिवसूत्रों के अवतरण से पूर्व पूर्वपीठिका के रूप में शारदापीठ के नगर श्रीनगर में थी फिर भी इस सत्य को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कश्मीर शैवदर्शन की प्रथम लिखित कृति 'शिवसूत्र' ही है। द्वैतवादी मान्यता, शुद्ध अद्वैत तत्त्व अथवा आदर्शवादी अद्वैतवाद इन्हीं शिवसूत्रों के माध्यम से संस्कारित एवं परिष्कारित हुआ। कश्मीर-शैव दर्शन आगमशास्त्र, स्पंदशास्त्र एवं प्रत्यभिज्ञाशास्त्र से श्रीसम्पन्न रहा है। आचार्य एवं शिष्य के क्रम से मालिनीविजय, शिवसूत्रादि आगमशास्त्रों का आविर्भाव हुआ। स्पंदसिद्धान्त की विवेचना में स्पन्दकारिका आदि ग्रन्थ तत्पर हैं। आगमों की दार्शनिकता की सबलता का प्रामाण्य प्रस्तुत करने वाला तार्किक बुद्धिबल का प्रस्तोता प्रत्यभिज्ञाशास्त्र है।

स्वरूपज्ञान के लिए शिवसूत्र ज्ञान अभीष्ट है। ज्ञानाभास से आत्मा का नित्य शिव-स्वरूप आवृत्त हो जाता है उस आवृत्ति के नाश के लिए और स्वरूप ज्ञान के लिए, स्वरूप विषयक विभिन्न मतभेदों की निराकृति के लिए शिव ने सूत्रों का श्रीगणेश किया। द्वैतदर्शन द्वारा समाप्तप्राय रहस्य सम्प्रदाय का लोक में विच्छेद न हो इसी अभिप्राय से अनुग्रह की इच्छा से, आत्मा और ईश्वर के प्रत्याख्यान में तत्पर प्रख्यात नास्तिक प्रमुख नाग बोधादि द्वारा आक्रान्त जीवलोक में रहस्य संप्रदाय के उच्छेद को अवरुद्ध करने की इच्छा निःश्रेयसकामी मुमुक्ष जनों की मोक्षसिद्धि के लिए ही परम परमेश्वर ने शिवसूत्रों का ज्ञान प्रचारित एवं प्रसारित किया। शक्तिचक्र के अनुरोध से अहन्ताभाव से युक्त स्वरूप-स्थिति के ज्ञान के लिए शिवसूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सिद्ध के आदेश द्वारा प्राप्त शिवसूत्रों का ज्ञान आचार्य वसुगुप्त ने अपने शिष्य भट्टकल्लट को दिया। कल्लट ने अपने भातुल पुत्र 'प्रज्ञार्जुन भट्ट' को दिया। प्रज्ञार्जुन ने अपने शिष्य महादेव भट्ट को महादेवभट्ट ने अपने पुत्र श्रीकण्ठभट्ट को दिया।[1] भास्कर

---

1. *स्पन्दकारिका विवृत्ति संख्या 3, पृ० 4, (पा०टि०) प्रथमं श्रीवसुगुप्तपादैः सूत्रावतिः दृब्धा शिवसूत्रवार्तिक भास्कर, श्लोक 3-4 वसुगुप्तगुरोः पुरासिद्धोदेशात्...सोऽपि प्रादाद्भट्टायवल्लटाय.... रहस्यप्येण मातुलेयाय चावदत्*

शिवसूत्र विमर्शनी, पृ० 2-3 वसुगुप्तनाम गुरु... शिवसूत्राणि ततः समाससाद्। एतानि च भट्ट श्रीवल्लटाथेषु सच्छिष्येषु प्रकाशितवान्।

शिवसूत्र विवरण, उपोदधात्, श्रीमान्वसुगुप्ताचार्यः समासादितानि... तानि स्वशिष्याय भट्टकल्लटाय व्याहरतिस्य...तानि भातुलीचाय...प्रोवाच।

शिवसूत्रों का अध्याय विभाजन 'प्रकाशः' कहकर करते हैं। क्षेमराज और वरदराज 'उन्मेष', सुखानन्द-जाडू 'प्रकरण'। भास्कर ने अपने त्रिथा विभाजन इस रूप में स्वीकार किया सामान्यचित्प्रकाश, सहज विद्योदय तथा विभूति स्पंद। क्षेमराज ने उन्मेषत्रय को क्रमशः शाम्भवोपाय-प्रकाशन, शाक्तोपाय-प्रकाशन, आणवोपाय-प्रकाशन, सुखानंद ने इन्हें क्रमशः शांभव साधन प्रकरण, शाक्तोपायसाधन प्रकरण, आणवोपाय प्रकरण कहा है।

शिवप्रोकथ्य 'सूत्र' संख्या में ७७/७९। मूलतः इन में कोई विभाजन नहीं है। विषय विवेचन के आधार पर इसका त्रिधा विभाजन उपलब्ध है। शिव ने सूत्र रूप में पति, पशु और पाश की सशक्त दार्शनिक पृष्ठभूमि अद्वैतोन्मुखी काश्मीर की शैवधारा को, त्र्यम्बक दर्शन को सुप्रतिष्ठित किया। 'काश्मीर-शैव-दर्शन' के साहित्य की समृद्धि का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं शिवसूत्रों को भी प्राप्त है। 'कल्लट' के स्पन्दसूत्र तत्त्वार्थ 'चिंतामणि टीका' 'मधुवाहिनी' भास्कर का 'शिवसूत्रवार्त्तिक' क्षेमराज की 'शिवसूत्रविवरणम् तथा राष्ट्रगुरु की 'ऋज्यवर्थबोधिनी'-इन व्याख्या ग्रन्थों के सृजन में मूल शिवसूत्र ही हैं। इसके अतिरिक्त शिवसूत्रों के ही सिद्धान्तों की विशेष विवेचिका कृति 'स्पन्दकारिका' है। क्षेमराज का 'स्पन्दसन्देह' तथा 'स्पन्दनिर्णय', भट्टकल्लट का 'स्पन्दसर्वस्व' रामकण्ठ की 'स्पन्दकावृत्ति', उत्पलवैष्णव की 'स्पन्दप्रदीपिका' ये सभी परम्परा शिवसूत्रों से ही संबंधित ग्रन्थ है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिवसूत्रों पर अनेक ग्रन्थों का सृजन हुआ, जो साक्षात् अथवा परम्परा से इन सूत्रों से सम्बन्धित हैं। शिवानुग्रह से शक्तिपात होता है। शिवानुग्रह और शक्तिपात - ये दोनों ही स्थितियां 'अनुपाय' की स्थिति में संघटित होती हैं। शांभवोपाय, शाक्तोपाय तथा आणवोपाय शैव-साधना-संधान के, आत्मज्ञान के संस्थान के, सोपानत्रय हैं, उपायत्रय हैं। साक्षात् महेश्वर द्वारा उपदिष्ट होने से ये सूत्र गाम्भीर्यपूर्ण, रहस्यपूर्ण हो गए हैं। शिवसूत्रों के अपर पर्याय के रूप में महेश्वरसूत्र की संज्ञा भी ग्राह्य प्रतीत होती है। लोककल्याण की सद्भावना की अधिकता तथा शैवदर्शन की रहस्यपूर्ण ज्ञान-सम्पत्ति को भूलोक में वितरण की आकांक्षा - इन सूत्रों के प्रणयन एवं पृथ्वीतल पर अवतरण के मूल में निहित तत्त्व हैं। निःश्रेयस के अभिलाषी जिज्ञासुओं को निःश्रेयस-सिद्धि के लिए परम दयामय परमेश्वर ने सूत्रों का उपदेश दिया जिससे इदन्ता तथा अहन्ता चिन्मय आत्मा का अस्तित्व होता है। असंगी नित्य होता है, सर्वानुस्यूत होता है, शक्ति से सम्पन्न होता है, लुप्तस्वरूप प्रतिष्ठा के ज्ञान के लिए इन सूत्रों की प्रयोजनसत्ता सुसिद्ध है। आत्मस्वरूप के विषय में विविध मतभेदों का निराकरण करने के लिए इन सूत्रों का सृजन हुआ तथा अहन्ता के ज्ञानाभासों से अखण्डित शिवरूप आत्मा की होने वाली आवृत्ति नष्ट हो जाए। 'शिवसूत्र शिवोपनिषत्संग्रह रूपाणि शिवसूत्राणि ततः समाससाद्'[1] शिवसूत्रों को शिवरहस्यागम संग्रह नाम से भी अभिहित किया जाता है।

''शिवरहस्यागमशास्त्रसंग्रहरूपाणि''[2]

---

1. *शिवसूत्र विमर्शनी, पृ० 3*
   शिवसूत्र विवरण, सुखानंद, उपोद्धात
2. *शिवसूत्र विमर्शनी, पृ० 3, पादगत टीका, 14*

यह शिवसूत्र त्रिकदर्शनात्मक है।[1] शिवसूत्रों के स्रष्टा स्वयं शिव हैं। 'शिवः सूत्रमरीरचत्'[2] 'सूत्रमाह महेश्वरः'[3] 'सूत्रमीशोऽथभाषत्'[4] 'सूत्राण्याह कृपाकुलः स्वरूपं शिवः'[5] आत्मस्वरूप के विषय में उपलब्ध होने वाले विभिन्न मतभेदों के प्रत्याख्यान के लिए इन सूत्रों का सृजन एवं अवतरण हुआ।[6] द्वैतदर्शन द्वारा समाप्तप्राय रहस्यसम्प्रदाय को लोक में पुनः स्थिर करने के लिए इन सूत्रों का प्रणयन हुआ।[7]

त्र्यम्बकादित्य से प्रारम्भ होने वाली शैवधारा काश्मीर प्रदेश में प्रवाहित हुई। शिवसूत्र त्रिक-दर्शन का मूल आधार हैं, आगम से अनुप्राणित है, उपात्रय के विवेचक हैं, काश्मीर-शैव-दर्शन तथा लोक के उपकरण हैं। योगनिद्रा में सर्वप्रथम मानवीय हित की धरोहर आचार्य वसुगुप्त को उपहृत की गई[8] जिससे लोक-संस्कृति उपकृत हुई। काश्मीर-शैवदर्शन की अद्वैतवादी परम्परा की प्राथमिक परिणति दार्शनिक ग्रन्थ के रूप में अवतरित हुई। वसुगुप्त एवं शिवपुत्र के इस मन्तव्य की व्याख्या इसी रूप में ग्राह्य है कि सूत्रों का साक्षात् सृजनकार्य वसुगुप्त से संबंधित न होकर यद्यपि महेश्वर से संबंधित है तथापि सूत्रों के उपदेश एवं ज्ञान के ग्राहक प्रथम आचार्य होने की ही दृष्टि से वसुगुप्त के साथ शिवसूत्रों का अटूट सम्बन्ध जुड़ गया है।

वसुगुप्त की शिवसूत्र प्राप्ति के विषय में अनेकविध कथाएं प्रचलित हैं। विभिन्न विद्वानों द्वारा इस विषय की चर्चा अपनी-अपनी चिन्तनशैली से अलग-अलग प्रकार से की गई है। शिवसूत्रविमर्शिनी के प्रणेता आचार्य क्षेमराज इस प्रकार से विवरण प्रस्तुत करते हैं कि रहस्य सम्प्रदाय के संरक्षणार्थ परमशिव ने अनुकम्पा के साथ वसुगुप्त को स्वप्न में ऐसा आदेश दिया कि यहां पृथिवी के महान् शिलातल पर रहस्य है जो कि अनुग्रह प्राप्त करने योग्य अधिकारी में यथेष्ट प्रकाश्य है। निद्राभङ्ग होते ही वसुगुप्त की अन्येषणा उन्हें इस महान् शिलाखण्ड तक ले गई। हाथ से उस शिला को पलटने पर स्वप्न में शिव के संकल्प के अनुसार

---

1. *ऋज्वर्थबोधिनी, राष्ट्रगुरु, मुख्य पृ० 1*
2. *शिवसूत्रवार्तिक भास्कर, पृ० 5, श्लोक 14*
3. *-वही-, श्लोक 16*
4. *-वही-, पृ० 8, श्लोक 17*
5. *-वही-, पृ० 4, श्लोक 12*
6. *शिवसूत्रवार्तिक भास्कर, उपोद्धात, पृ० 5, श्लोक - 14*
   स्वरूपस्योपन्यासे बाहवयो विप्रतिपत्तयः संस्थितास्तद्वयुदासाथ्रंशिवः सूत्रमरीरचत्।
7. *शिवसूत्र विमर्शनी, उपोद्धात, पृ० - 2 द्वैतदर्शनाधिवासितप्राये जीवलोकेक रहस्यसंप्रदायो मा विच्छेदि इत्याशयत....परमशिवेन्।*
   शिवसूत्र वार्तिक वरदराज, उपोद्धात, पृ०-2 श्लोक - 1 नागबोध्यादिभिः सिद्धैर्नास्तिकानां पुरः सुरैः आक्रानते जीवलोकेः..... रहस्यसम्प्रादयोऽयं मा विच्छेद - शिवसूत्राणि
   शिवसूत्र विवरण, उपोद्धात्, पृ० - 1, 'इह खलु भगवान परम कारुणिकः परमेश्वरी निःश्रेयसकामनां जिज्ञासुनां निःश्रेयससिद्धयै .....शिवसूत्रायपदिदेश।
8. *शारदातिलक, श्लोक 3 श्रीकण्ठ वसुमन्तं वसगुप्तम्*

वसुगुप्त ने उस शिलातल पर शिवरहस्य के संग्रहभूत शिवसूत्रों को प्राप्त किया।[1] अन्यत्र क्षेमराज ने अपने मन्तव्य को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि शिवानुग्रह से महिमाप्राप्त वसुगुप्त गुरु को महादेवगिरि में वास करते हुए स्वप्न में एक सिद्ध से उपदेश प्राप्त हुआ। महेश की इच्छा से महादेव पर्वत के महान् शिलातल पर लिखित अत्यधिक रहस्यात्मक शिवसूत्रों को आचार्य ने पा लिया।[2] इस प्रकार क्षेमराज यह प्रतिपादित करते हैं कि स्वप्न में शङ्कर द्वारा दिए गए उपदेशानुसार शिलातल से वसुगुप्त ने सूत्रों को प्राप्त किया।[3] शिवसूत्रविवरण के रचयिता सुखानन्द जाडू के अनुसार कश्मीर-प्रदेश के मध्य में स्थित महादेवगिरि की विशाल शिला पर यथाक्रम ये सूत्र अंकित किए गए।[4] सुखानंद के कथनानुसार भगवान शङ्कर ने योगनिद्रा में शिव-भाव की जननी सम्पत्ति के साधनरूप शिवोपनिषत्संग्रह के लिए सूत्रों को महोपल पर मुद्रित किया। जागने पर दिए गए संकेत के अनुसार वसुगुप्त ने महान् शिला के स्थान को पा लिया और परमेश्वर की भक्ति की अधिकता से धन्य हुए। स्पंद वाले हाथ के स्पर्श से शिलातल को परिवर्तित करके सूत्रों को प्राप्त कर लिया।[5]

शिवसूत्रवार्त्तिककार भास्कर की मान्यता क्षेमराज से भिन्न प्रतीत होती है। उनके अनुसार प्राचीनकाल में महादेव पर्वत पर वसुगुप्त के लिए सिद्ध के आदेश से शिवसूत्रों का प्रादुर्भाव हुआ।[6] स्वप्न एवं शिलातल के तथ्य की ओर भास्कराचार्य संकेत नहीं करते। सिद्ध के आदेश का विचार ही उन्हें मान्य रहा है। सुखानन्द शंकर के द्वारा योगनिद्रा में उपदेश का कथन करते हैं और वे शिलातल पर सूत्रों के मुद्रित एवं अंकित होने का समर्थन करते हैं। अन्य वार्त्तिकाकार वरदराज अपनी व्याख्या में इतना कहते हैं कि शिव की इच्छा से शिलातल पर शिवसूत्रों को लिखकर, महादेवगिरी पर स्वप्न में गुरु वसुगुप्त को उन सूत्रों का उपदेश दिया।[7] आचार्य वसुगुप्त के प्रमुख शिष्य भट्टकल्लट इस विषय में यह विवरण देते हैं कि शिव के द्वारा स्वप्न

---

1. *शिवसूत्र विवरण, पृ० 2-3, परमशिवेन स्वप्ने अनुगृह्य उन्भिणितप्रतिभः कृतः यथा अन्न महीभृति महति शिलातले अनुग्रह।*

2. *स्पन्दनिर्णय, क्षेमराज, पृ० 1-2, परमशिवविशोन्मीलितमहिमा स्वप्नोपतब्धोपदेशः श्रीमान्वसुगुप्ताचार्यो महादेवपर्वताद्भगवदिछयैव महाशिलातलोल्लिखितानि अत्यरहस्यानि शिवसूत्राण्यासाध।*

3. *स्पन्दनिर्णय, क्षेमराज, पृ० 76, शंकरस्वप्नोपदेशसारं शिलातवादवाप्य।*

4. *शिवसूत्रविवरण उपोद्धात, उपदिष्टानि सरहस्यानि कश्मीरदेश मध्यवर्ती महादेवगिरी विशालशिलायां यथाक्रममङ्कितानि।*

5. *शिवसूत्र विवरण, उपोद्धात्, भगवता शंकरेण योगनिद्रायां सूत्रमुद्रित महोपलाभिज्ञान प्रबोध च यथाभिज्ञात संकेतानुसार परिप्राप्त महाशिवास्थलः परमेश्वर भक्त्युद्रेवसफलस्पंदपाणि स्पर्श परिवर्तित शिवातलः श्रीमान्वसुगुप्ताचार्यः समासादितानि।*

6. *शिवसूत्रवार्त्तिक भास्कर, पृ० 2, श्रीमन्महादेवगिरौ वसुगुप्तगुरोः पुरा सिद्धदेशात्प्रादुरासन् शिवसूत्राणि तस्य हि*

7. *शिवसूत्रवार्त्तिक, वरदराज, श्लोक 2-4, स्वेच्छाया शिवसूत्राणि समालिख्य शिलातले महादेवगिरी स्वप्ने महेश्वरशिरवामणेः उपदिश्य*

में उपदेशग्रहण करके महादेवपर्वत पर गुरु वसुगुप्त को शिवसूत्रों की उपलब्धि हुई।[1] स्पंदकारिका के टीकाकार अर्थात् स्पन्दप्रदीपिका के रचनाकार श्री उत्पलवैष्णव इस मत का समर्थन करते हैं कि तत्त्वज्ञानी वसुगुप्त आचार्य को सिद्ध के मुख से रहस्य की प्राप्ति हुई, जिसका ज्ञान उन्होंने भट्टकल्लट तथा अन्य शिष्यों को प्रदान किया।[2]

उपर्युक्त विवेचित धारणाओं में इस प्रकार का वैषम्य देखने को मिलता है कि आचार्य भास्कर, भट्टकल्लट तथा उत्पलवैष्णव आदि विद्वान स्वप्न में शिव अथवा सिद्ध के द्वारा वसुगुप्त को सूत्रों के उपदेश दिए जाने के समर्थक हैं तो दूसरी ओर क्षेमराज शिला पर उट्टंकित शिवसूत्रों के विचार को मान्यता देते प्रतीत होते हैं। कल्लट, भास्कर आदि विद्वानों का क्रम वसुगुप्त की शिष्य परम्परा के अन्तर्गत है। उनके मन्तव्य का औचित्य ग्राह्य है। स्वप्न में इस प्रकार के रहस्य की प्राप्ति स्वाभाविक है। अन्य संभावना संभवतया दंतकथाओं का ही परिवर्तित रूप हो। इस प्रकार विचार की भिन्नता के रहते हुए भी यह साम्य सर्वत्र परिलक्षित होता है कि आचार्य वसुगुप्त को शिवसूत्रों का ज्ञान साक्षात् शिव से प्राप्त हुआ था। यह विवरण शिवसूत्रों के प्रथम ज्ञान के ग्राहक वसुगुप्त का शिवसूत्रों के साथ सान्निध्य प्रकाशित करने में यथेष्ट सहायक है। शिवसूत्रों की संख्या 77/78 है।[3]

शिवसूत्रों का प्रतिपाद्य संक्षेपरूपेण इस प्रकार हैं। आत्मस्वरूप चैतन्य है। स्वरूप के आवरण में ज्ञान कारण है। शक्तिरूपा कला द्वारा पशु व्यामुक्त हो जाता है। मातृकाएं ज्ञान की अधिष्ठान हैं, उद्यम ही भैरव है। शक्तिचक्र के संधान से जगत् का संहार हो जाता है। जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्था में स्वरूप अपरिच्युत रहता है। तीनों अवस्थाएं ज्ञानात्मक हैं, विकल्पात्मक हैं तथा मायारूपात्मक हैं। इन अवस्थाओं का भोक्ता वीरेश्वर है। योग भूमिका विस्मय का कारण बनती है। परमेश्वर की इच्छा सर्वातिशयी है। दृश्य देहरूप है, चित्त के संघटन के कारण दृश्य स्वप्नरूप होता है। तत्त्व के संधान से चैतन्य की प्राप्ति होती है। स्वपदरूप शक्ति चैतन्यरूप है। वितर्क द्वारा आत्मविज्ञप्ति होती है। समाधि से मिलने वाला सुख आनन्दमय है। योगी अपनी इच्छा के अनुसार निर्माण करता है। भूत का संधान करता है, भूतों को पृथक्-पृथक् करता है और विश्व की संरचना करता है। सर्वात्मभावपूर्ण शुद्ध विद्या के उदय से चक्रेश बन जाता है। स्वरूप के विमर्श द्वारा मन्त्रवीर्य की अनुभूति होती है। चित मन्त्र रूप है, प्रयत्नसाधक है, विद्या की शरीरसत्ता है। मन्त्र रहस्यमय हैं, हृदय में

---

1. *स्पन्दसर्वस्व, दृब्धं महादेवगिरौ महेश स्वप्नोपदिष्याच्छिवसूत्रसिन्धोः*
2. *स्पन्दप्रदीपिका, अयमत्र किलाम्नायः सिद्मुखेनागतं रहस्यं यत! तद्भटवल्टेन्दुवसुगुप्तगुरोरवाप्य शिष्याण्याम् तथा अन्त में वसुगुप्तादेवाप्येदं गुरोस्तत्त्वार्थदर्शिनः रहस्यं श्लोकयामास सम्यक श्री भट्टकल्लटः*
3. *भास्कर ने दो अतिरिक्त सूत्रों की अवधारणा मानी है। 17 स्वपदशक्तिः। विसर्गस्व भाव्यादबहिः स्थितेस्तत्स्थिति।*
   अन्यत्र पाठभेद भी मिलता है 'जाग्रत्स्वप्न सुषुप्त भेदेतुर्याभोग सवित्। जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तभेदे तुर्याभोग संभव। इच्छाशक्तिरूमा कुमारी। इच्छाशक्तितमाकुमारी।'

चित्त का विकास करने से अविद्या का लोप होता है। शुद्ध विद्या के उदय से स्वाभाविक खेचरी शिवावस्था प्राप्त होती है। मन्त्रवीर्य के उदय में गुरु उपाय होता है। मातृकाचक्र का सम्यग् परिज्ञान होता है। ज्ञानाग्नि में देह हवि बन जाती है, ज्ञान अन्न के समान तृप्तिदायक होता है। विद्या का संहार अविद्याजन्य भावों को स्वप्न के समान बना देता है। आत्मा चित्त धर्मा है। विषय ज्ञान बन्धन है। तत्त्व का अविवेक मायारूप है। देह में कला का संहार, नाड़ी का संहार भूतजय का कारण बनता है। मोह की जीत अविद्या को जन्म देती है। मोहजन्य आवरण से भोगसिद्धि होती है। इन्द्रियवर्ग प्रेक्षक होता है। धी से सत्त्व की सिद्धि स्वतन्त्र भाव से होती है। आत्मा सर्वत्र स्फुरित होती है। सृष्टि स्वभाव से अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है। बीज का अवधान अभीष्ट है। आसनस्थ का हृदय निमज्झन सुख प्राप्त करता है। स्वमात्रा से निर्माणकार्य सम्पादित होता है। विद्या के अविनाश से जन्म का नाश होता है। कवर्ग आदि में माहेश्वर्य आदि पशु की मातृकाएं रहती हैं। तीन अवस्थाओं में चतुर्थ का तैलवत् सिञ्चन इष्ट है। अपने चित्त से मग्न होकर प्रवेश करना चाहिए। मध्य में अवरसृष्टि होती है, प्राण के समाचार से समदृष्टि होती है, मात्रा में प्रत्यय के संधान से नष्ट हुए भाव पुनः प्रकट हो जाते हैं। योगी शिवतुल्य हो जाता है, शारीरिक वृत्ति व्रत रूप हो जाती है तथा कथा जयरूप होती है। आत्मज्ञान दानशीलता को जन्म देता है। गुरु का प्रभुत्व–ज्ञान आदि में साधन होता है। शक्ति का विकास जगत रूपात्मक है। स्थिति एवं संहार में शक्ति प्रचय होता है। सृष्टि आदि भावों के होते हुए भी संवेत से स्वरूप युक्त रहता है। सुखदुखादि बाह्य प्रतीतियां बन जाती हैं। विमुक्त केवली के रूप में स्थित होता है। कर्मात्मप्तोह का प्रतिसंहार करता है। अभेदावस्था में सर्गान्तर की क्रिया होती है। सृष्टि के निर्माण की शक्ति स्वाभाविक है। तुर्यपद तीनों पदों में अनुप्राणन करता है। जिस प्रकार चित्त में स्थिति होती है उसी प्रकार बाह्य कारणों में तुर्य अनुप्राणन अपेक्षित होता है। अभिलाषा के कारण कर्मात्मा बाह्य गति करता है। प्रमिति के रूढ़ होने से अभिलाषा का क्षय होता है और कर्मात्मा क्षीण होता है। भूतकंचुकी विमुक्त होता है एवं पति से परम समता रखता है। प्राण संबंध स्वाभाविक है। नासिका के अन्तर, मध्य, दक्षिण, वाम तथा सुषुम्णा में संयम करने से योगी का पुनः प्रतिमीलन होता है।

ooo

विद्रोह की रंगमंचीय बुनावट

(नरेन्द्र मोहन के नाटक 'मंच अंधेरे में' के संदर्भ में)

❑ नीरू वर्मा

रंगमंच से गहरे और अभिन्न रूप से जुड़कर नाटक आज जनचेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन चुका है। सामान्य-जन से जुड़ी समस्याओं और सरोकारों को अभिव्यक्त करने का नाटक एक ऐसा साधन है जो तत्काल प्रभावी ही नहीं कलात्मक भी है। सन् पचास के बाद का हिन्दी नाटक एक तरह से रंगमंच के विकास से आन्तरिक स्तरों पर जुड़ा हुआ है। इस में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, पृथ्वी थियेटर, संगीत नाटक अकादमी जैसी संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भागीदारी रही है। इससे नाट्य और रंग आंदोलन में नवीन क्रांति व ऊर्जा का संचार हुआ है जिसने नाटक और रंगमंच को विभिन्न स्तरों पर जनजीवन से तीव्रता के साथ जोड़ दिया है। इस तरह आम आदमी की जटिल और विषम परिस्थितियों को उस की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को उसने वाणी प्रदान की है। ऐसी हालत में रचनाकार और व्यवस्था के बीच टकराव स्वाभाविक है। कलाकारों, रंगकर्मियों और रचनाकारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जब बाधित होती है और उनके सामने सृजन का संकट पैदा हो जाता है तो वे विद्रोह की अभिव्यक्ति के लिए नाटकीय शब्द का सहारा लेते हैं। समकालीन नाटक-कारों ने इस स्वर को बड़ी गहराई से महसूस किया है और अपने नाटको में समय-समय पर इसे अभिव्यक्ति भी दी है, चाहे वह जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोनार्क' और भीष्म साहनी का 'हानूश' हो, सुरेन्द्र वर्मा का 'आठवां सर्ग', मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' या नरेन्द्र मोहन का 'मंच अंधेरे में' हो।

समसामयिक संदर्भों को उद्घाटित करने वाले उपर्युक्त नाटक लोक-जीवन से जुड़े हुए हैं। 'कोणार्क' एक ओर जहाँ अन्याय और शोषण के खिलाफ कलाकार की जागृत चेतना और प्रतिशोध का प्रतीक है वहीं 'हानूश' सत्ता के विरोध में कलाकार की सृजन क्षमता एवं मुक्ति के लिए छटपटाहट को व्यक्त करता है, साथ ही कला और कलाकार के अंतर संबंधो को भी अभिव्यक्त करता है। इस परम्परा में सुरेन्द्र वर्मा का 'आठवां सर्ग' है जिसमें सत्ता और साहित्यकार के बहुस्तरीय संबंधों, बुद्धिजीवियों पर हुए अत्याचारों का मार्मिक चित्रण है। मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' व्यवस्था और कलाकार के द्वंद्व को, सत्ता के संरक्षण एवं

---

* *305/3, जनता फ्लैट, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली-110063, (M) 9818236500, 93501046448*

प्रलोभन में कलाकार की दशा एवं मानसिकता के विभिन्न आयामों को दर्शाता है। सत्ता और कलाकार के द्वंद्व पर आधारित नाटकों में नरेन्द्र मोहन का नाटक 'मंच अंधेरे में' रंगकर्मियों के संकट और उनकी समस्याओं को नयी दृष्टि के साथ प्रस्तुत करता है। उन के अन्य नाटकों की भांति यहाँ भी उनके नाटकीय मानस का केंद्र बिंदू तनाव से उपजा विद्रोह है। उनके भीतर का विद्रोही कभी कबीर (कहै कबीर सुनो भाई साधो), कभी तुकाराम (अभंगगाथा), कभी कलंदर (कलंदर) तो कभी रंगनाथ-सुरेखा (मंच अंधेरे में) के रूप में शक्लें बदल-बदल कर उन के नाटकों में आता रहता है। ये ऐसे पात्र हैं जो अनवरत संघर्ष करते हुए प्राणों की बाजी लगाने से भी नहीं चूकते।

नरेन्द्र मोहन के नाटकों में व्यक्ति और व्यवस्था के रिश्तों को विभिन्न स्तरों पर चित्रित किया गया है। तानाशाही व्यवस्था हो या लोकतांत्रिक, दोनों में टकराव की स्थितियाँ आती ही हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जब लोकतांत्रिक मूल्यों को बचाने के नाम पर सत्ता भीतर ही भीतर उन का हनन कर रही हो, तो संकट के ऐसे कठिन क्षणों में संवेदनशील हृदय उन मूल्यों की रक्षा की खातिर इस व्यवस्था से टकराता ही है। सिंहासन की चाह में सत्ता मूल्यों को ताक पर रख देती है। यहाँ सत्ता और साहित्यकार के मूल्य अलग-अलग हो जाते हैं। सत्ता के मूल्य बाज़ार से संचालित और प्रेरित होते हैं और तब 'मूल्य' का 'मूल्य' विपर्यय होने लगता है। 'मंच अंधेरे में' के रंगनाथ की तरह आज अनेक संवेदनशील लोग इन्हीं मूल्यों की खातिर संघर्षरत हैं; लेकिन अफसोस की यह बात है कि कभी 'पब्लिक मारैलिटी' के नाम पर तो कभी 'साजिश' के नाम पर नाटकों के मंचन पर पाबंदी लगा दी जाती है। सत्ता कला प्रदर्शन के सभी सूत्रों को अपने हाथों में रख कर कलाकार को कठपुतली की भांति नचाती है। कलाकार जब इसका विरोध करता है, अपने प्रदर्शन की जगह के छिन ज़ाने के विरुद्ध आवाज़ उठाता है तो वह सत्ता की लाठियों, गालियों और हंटरों का शिकार होता है। नाटक में रंगनाथ, सुरेखा, नंदिता, कुणाल, सुदर्शन लोकतंत्र के पक्ष में मानवीय मूल्यों को बचाने के लिए सतत संघर्षशील दिखते हैं और इस का प्रमाण दृश्य से ही मिलने लगता है।

नाट्य-वस्तु की दृष्टि से यह एक रंगकर्मी परिवार की त्रासद कथा है। इस का केन्द्रीय पक्ष रंगनाथ का परिवार है दूसरा महारानी द्वारा संचालित व्यवस्था-पक्ष है। दोनों के द्वन्द्व और संघर्ष को उभारने के लिए इन दोनों कथाओं का विन्यास बड़े कौशल से किया गया है। आम आदमी की समस्याओं से कोई सरोकार न रखने वाला सत्ता पक्ष (महारानी, राजकुमार, काल, हलाल, बेताल की कठपुतलियाँ दीवार में से उभरती हैं) मंच पर जबरन अपना अधिकार कायम कर वहाँ से कलाकार को खदेड़ देती हैं। दोनों कथाओं का तनाव और संघर्ष नाटक के अंत तक चलता है।

'मंच अंधेरे में' नाटक में नाटककार ने नाट्य-वस्तु को दो अंकों में विभाजित किया है। प्रथम अंक में पाँच दृश्य हैं और दूसरे अंक में केवल एक दृश्य। पहले अंक में रंगनाथ है और उसका परिवार मौजूद है जो इमरजैंसी के दौर से गुजरता हुआ आज तक संघर्ष ज़ारी

रखे हुए है। इस में सुरेखा-सुदर्शन, लारेंस और जॉन हैं जो मंच पर नाटक के भीतर घटित होते, चेहरों के पीछे उगते चेहरे देखते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में कानून और न्याय की आड़ में महारानी (सत्ता) रचनाकार की स्वतंत्र दृष्टि में हस्तक्षेप करती है। पहले और दूसरे अंक में एक लंबा अंतराल है जो परिस्थिति और चरित्र में आए तीव्र परिवर्तनों का सूचक है। यहाँ आकर सुरेखा का संघर्ष नये आयाम ले लेता है और नयी रंग पीढ़ी (नंदिता) के संघर्ष में बदल जाता है। सत्ता और कलाकार का संघर्ष यहाँ एक मेटाफर की शक्ल ग्रहण करने लगता है।

नाटक की केंद्रीय संवेदना अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से आन्तरिक स्तरों पर जुड़ी हुई है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्वतंत्रता एक बड़ा मूल्य है। संविधान के भीतर रहते हुए यदि किन्हीं हालात में इस स्वतंत्रता का हनन होता है, तो यह विचारणीय प्रश्न है कि सत्ता के बक्त स्वतंत्रता को कैसे बनाए रखा जाए? नाटक का यही केन्द्रीय प्रश्न है इसके पात्र-कलाकार, रंगकर्मी, लेखक व्यवस्था में बुरी तरह फँसे हो कर भी उस के कुचक्रों से बाहर आने और आम-आदमी की यातना में भागीदार होने का प्रयत्न करते हैं। कलाकार सत्ता के भीतर हो या बाहर, उसकी स्वतंत्र-दृष्टि बाधित होती ही है। यह किसी से छिपा नहीं है कि आज भी जब कलाकार सत्ता के समक्ष अपना स्वतंत्र पक्ष रखते हैं तो उन्हें कभी देशनिकाला, कभी नज़रबन्दी की यातना से गुज़रना पड़ता है तो कभी मौत को गले लगाना पड़ता है।

नाटक में सुरेखा-सुदर्शन रंगकर्म को जारी रखने के लिए जिन आर्थिक समस्याओं से जूझते हैं, वे आज भी उतनी ही प्रासंगिक बनी हुई हैं। रंगकर्मियों ने इसे बहुत गहराई से महसूस किया है। रंगकर्मी सतीश देव का वक्तव्य है: 'मुझे शिद्दत से महसूस हुआ कि रंगकर्मियों का यह दर्द नाटक की अभिव्यक्ति का हिस्सा ही है। स्वयं अपनी आर्थिक परेशानियों से जूझना उनके लिए भी किसी मुसीबत से कम नहीं। ऐसे में व्यवस्था हो या हमारी परिस्थितियाँ, हमारे भीतर प्रस्फुटित हो रही विचार-श्रृंखलाएँ बाधित होती ही हैं।'

'मंच अंधेरे में' की नाट्य-वस्तु और चरित्र-विधान इसी संवेदना को गहराते हैं। रंगनाथ का ही चरित्र लीजिए। यह चरित्र कई नाटकीय संदर्भों और आयामों में गुथ कर प्रस्तुत हुआ है। नाटक में रंगनाथ के चरित्र के कई शेड्स उभरे हैं यहाँ वह कहीं 'लोकनायक', कहीं 'लोकविदूषक', कहीं 'नेता' तो कहीं 'अभिनेता' है। इन सभी का आभास देते हुए भी वह अपने संपूर्ण रूप में एक रंगकर्मी है- आम-आदमी के हालात और संतापों से जुड़ा हुआ। रंगनाथ का मंच को बचाए रखने का संघर्ष आम-आदमी के जीने-मरने की जगह को बचाने के संघर्ष में तब्दील हुआ है और उसकी रंगचेतना मानवीय मूल्यों, मानवीय संदर्भों से जुड़कर आधुनिक अर्थों में व्यक्त हुई है, जहाँ बाज़ार और उससे उपजे मुनाफे ने मनुष्य को मात्र 'उपभोक्ता' बना दिया है और उसके जीवन के कोमल-मधुर संबंधों को हाशिए पर ला खड़ा किया है। तभी तो 'मंच अंधेरे में' नाटक का पात्र रंगनाथ यह कह उठता है- 'बाज़ार के दैत्य ने सभी रंग चूस लिए हैं।' रंगनाथ के लिए मंच सच और सपने का मिला-जुला रूप

है। हताश और निराश होते हुए भी रंगनाथ यह जानता है कि कलाकार का बच निकलना तो आत्महत्या है। ऐसे कठिन समय में भी रंगनाथ अपनी रंगचेतना को जीवित रखने के लिए मंच पर अकेला होते हुए भी उस की 'अलातचक्र' के साथ विद्यमान है। मंच पर अकेले होते हुए भी उस की रंगक्रांति की लौ धीरे-धीरे जल रही है। उसकी रंग चेतना जन-मन में बस गई है जहाँ नाटक में दर्शकों की समवेत ध्वनियाँ 'रंग कभी बूढ़ा नहीं हो सकता' उभरी हैं। रंगनाथ इसी उत्साह से प्रेरित अपने रंगकर्म को सत्ता के बिछाए जाल से बचा रखने के लिए अनवरत संघर्षशील रहता है जिसके लिए वह रंग-भाषा, रंग उपकरण और रंगमंच का बखूबी प्रयोग करता है।

रंगमंच इन्हीं रंग उपकरणों के जरिए उस रंग को बचाने के लिए संघर्ष करता है जिसे सत्ता व्यवसायिक शक्तियों के साथ मिलकर समाप्त करना चाहती है। रंग शब्दों में रंगनाथ की गहरी आस्था है। इसे कलाकार की कला के प्रति, नाटककार की नाटकीय शब्द के प्रति आस्था भी कह सकते हैं। रंग शब्दों में आस्था और विश्वास ने ही उसे संघर्षशील बनाया है। रंगनाथ शब्दों द्वारा सत्ता की भीतरी परतों की पोल खोलते हुए कहता है, 'कठिन दौर है, बेटी, आत्मघाती, दौर। थोथा चना बड़ा घना बज रहा है। खोखले, गोल और चिकने शब्दों का राज है जबकि मेरे पास हैं रंगमंच के शब्द सीधे, दो टूक, हरकतों-भरे, मगर इन शब्दों को किसी ने जुबान से नोच कर सूखे कुंवे में बंद कर दिया है।' शब्दों के जबरन छिन जाने से वह दु:खी होता है लेकिन घोर अंधकारमय वातावरण में भी वह आत्महत्या के पाप का भागी नहीं बनना चाहता। इसीलिए वह महारानी के नाम पत्र लिख कर छोड़ जाता है जिसमें वह भेष बदल-बदल कर अलख जगाने की बात करता है। जंग लगे दिमागों को बदलने की चाह उसमें है। रंगनाथ किसी भी सूरत में सत्ता के अमानवीय व्यवहार के आगे झुकता नहीं है। इसी कारण धीरे-धीरे उसका पूरा परिवार एक भयानक त्रासदी को झेलता है। वह सत्ता के दमन को स्वीकार नहीं करता, न ही वह जेल जाता है और न ही आत्महत्या करता है। परिस्थितियों के दबाव में आ कर भी उस से मुक्त हो जाता है। उस का आत्मसंघर्ष उसे पुन: अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है और कार्य-व्यापार यहाँ पूर्ण होता लगता है और तमसो मा ज्योर्तिगमय की भावना फलित होती नज़र आती है।

'मंच अंधेरे में' नाटक में विद्रोह की अभिव्यक्ति नाटक के भीतर से धीरे-धीरे उभरी है। विद्रोह करने वाले रंगनाथ के लिए थियेटर उसका घर है जिसे अत्याचारियों, बाजारू लोगों से बचाने के लिए वह रंगमंच को ही अपना हथियार बना कर लड़ता है। उसे यह भली-भांति पता है कि यदि मंच को बचाना है तो व्यवस्था के भीतर रहकर ही मार्ग खोजा जा सकता है। लोकतांत्रिक शासन में लोकतांत्रिक पद्धति पर आस्था रखते हुए सत्य, न्याय और अधिकार के बल पर अन्यायी, स्वार्थी, अत्याचारी ताकतों के विरुद्ध जनात्मक स्वर यहां कायम किया गया है।

रंगनाथ के साथ नाटक में मौजूद अन्य पात्र सुरेखा, सुदर्शन, नंदिता और लारेंस स्वतंत्रता एवं अधिकार के इस संघर्ष के सफर को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रखने के लिए संकल्पशील

नज़र आते हैं, क्योंकि अपनी बात कहने का कोई अन्य रास्ता उन्हें नहीं सूझता। ये सभी चरित्र अपने इस संघर्ष में व्यवस्था के आतंक का शिकार होते हैं। सच्ची और खरी बात कहने पर रंगनाथ के परिवार को बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। सुरेखा-सुदर्शन सत्ता की चालों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में आ ही जाते हैं। इन दोनों पात्रों का विधान नाटककार की सूक्ष्म नाट्य-दृष्टि का परिचायक है। सुरेखा-सुदर्शन का नटी और सूत्रधार में रूपांतरण नाटकीय द्वंद्व को सार्थकता प्रदान करता है। नटी और सूत्रधार नाटक एवं रंगमंच का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होते हैं जो नाट्यशास्त्र के अनुसार पति-पत्नी का संबंध भी रखते हैं। नटी और सूत्रधार का विधान सुरेखा और सुदर्शन के विधान में ढलता है जहां वे कलाकारों की करुण दशा, विवशता के चित्रण, उनके संघर्ष का जीवंत चित्र उपस्थित करते नज़र आते हैं। वे एकसाथ कलाकार भी हैं और पति-पत्नी भी। चरित्रों के रूपांतरण की लेखकीय तरकीब नाटक के अंत तक गहरा कौतूहल और रोचकता बनाए रखती है।

कलाकार रंग-कर्म को जारी रखने में जिन आपदाओं, तनावों, पीड़ाओं, कष्टों-मुसीबतों, संघर्षों से गुज़रते हैं, उसे नाटक के चरित्र, उनकी मनः स्थितियां, घटनाएँ, जीवंतता एवं मूर्तता प्रदान करती हैं। सुदर्शन मंच को बचाए रखने के लिए जोखिम से बचे रहने की प्रवृत्ति अपनाए हुए आत्मकेंद्रित पात्र है। वह सुरेखा को कई बार व्यवस्था के आतंक से आगाह कराता है। इसके विपरीत सुरेखा जो बहुत बड़ी एक्ट्रेस है, जिसे कलाकारों के एकजुट न होने का अभाव सालता है, उसकी दोस्ती जॉन से बढ़ती जाती है। सुदर्शन अपने पारिवारिक जीवन तथा रंगमंच की उन्नति की खातिर चीफ का पद स्वीकार कर लेता है। सुदर्शन अपनी अहं भावना को कभी सुरेखा मनमानी का आरोप लगा कर तो कहीं परफार्मेंस में अपनी भागीदारी जता कर संतुष्टि पाता है। भीतर से वह सुरेखा की शोहरत को पचा नहीं पाता इसीलिए कहीं न कहीं वह स्वयं की अह्मसंतुष्टि के लिए हलाल मंत्री के द्वारा रंग शिखर के चीफ के ऑफर को ठुकरा नहीं पाता। सत्ता का नुमांइदा बन कर भी ठोकर खाता है। उस का बेटा कुणाल सत्ता की चालों का शिकार होता है। महारानी से की गई फरियाद भी बेअसर होती है। ऐसी दयनीय हालत में वह निराश-हताश हो वापस रंगमंच की ओर लौटता है। सुदर्शन और नंदिता के संवाद में हम सुदर्शन के भीतरी द्वंद्व का मार्मिक रूप उभरता देखते हैं, जहाँ सुदर्शन कहता है, 'रंगभूमि को बचाने चला था मगर उसे अपने पैरों तले रौंद डाला... मैंने क्या पाया—लांछन, लानत, गालियाँ, कुत्ते की तरह खदेड़ दिया गया।... रंगमंच मुझे बचा लो।' यहाँ उस कलाकार की करुण स्थिति है जो सत्ता के लोभ में आकर अपमानित होता है और पुनः अपनी कला की ओर लौटता है। ऐसी स्थिति में सुदर्शन उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ सक्रिय पात्र बन कर उभरा है। यही बात नाटक के अन्य पात्रों के बारे में भी कही जाए तो गलत न होगा। नाटक के पात्र विद्रोह के स्वर अपने तरीके से जारी रखे हुए हैं। रंगनाथ भेष बदल-बदल कर, सुदर्शन-सुरेखा मंच पर, कुणाल पत्रकारिता द्वारा तो नंदिता अपने विश्वास द्वारा।

क़लाकार के लिए तो कला ही जीवन है। उसके लिए कला से विमुख हो कर जीना

मरण समान है। सुदर्शन और कुणाल कलाकारों की उन स्थितियों को उद्घाटित करते हैं जहाँ वे हर सूरत में कला से अभिन्न रूप में जुड़े हैं। एक तरफ सुदर्शन है जो सत्ता के साथ समझौते की राह पर चलता है, मगर जल्द उस का मोहभंग हो जाता है। दूसरी तरफ निर्भीक और निडर कुणाल है जो अखबार में स्वतंत्र लेखन के कारण, थिएटर करने के कारण सिरफिरा करार दिया जाता है और एनकांउटर में मारा जाता है। कुणाल की दिल दहला देने वाली आपबीती उसकी डायरी (फर्स्ट हैंड इन्साईड स्टोरी) से पता चलती है जो अब हर जुबान पर है। कुणाल का बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। सत्ता चाहे कलाकार पर कितना ही जुल्म ढाए लेकिन कलाकार की कला राख में भी चिंगारी छोड़ ही जाती है। आज़ादी के अनेक वर्षों बाद आज भी आम-आदमी भेड़-बकरियों की तरह खदेड़ दिया जाता है। गणतंत्र और स्वतंत्रता सही अर्थों संदर्भों में चरितार्थ होने के लिए सत्ता की मुखापेक्षी बनी हुई है। सुरेखा के प्रश्न 'आज़ाद होना क्या होता है ?' का सुदर्शन के पास कोई उत्तर नहीं है। यह एक गंभीर और बड़ा प्रश्न है जो नाटक के पात्रों के जरिए नाटककार ने हमारे सम्मुख रखा है।

लोकतंत्र में जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित होती है, तब चारों ओर सन्नाटा व्याप्त हो जाता है। यह सन्नाटा हर तानाशाह की जान है लेकिन आम-आदमी की हँसी ही केवल उस सन्नाटे को तीर की भांति भेद देती है। सुरेखा की हँसी व्यवस्था द्वारा फैलाए अंधकार और सन्नाटे को चीर कर उसे समाप्त कर देना चाहती है। वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती है। उसके जुझारू व्यक्तित्व ने आरम्भ से अंत तक नाटकीय तनाव बनाए रखा है। सुरेखा का दुखद अंत वहाँ होता है जहाँ उसे सारे रंग खून से सराबोर नज़र आते हैं। 'रंगों में खून' यहाँ बड़े व्यापक अर्थ ध्वनित कर जाता है जिसमें आधुनिक यांत्रिक जीवन की सच्चाई झलक उठती है। हत्या, हिंसा, आतंक, दहशत के मंजर सजीव हो उठते हैं और सारे रंग उंगलियों से खून की तरह निचुड़ते नज़र आने लगते हैं।

सत्ता, लोकतंत्र और कलाकारों के रिश्तों के भीतर से जिस द्वंद्व और हताशा की सृष्टि होती है, उसे नाटक में कई धरातलों पर व्यक्त किया गया है। नाटक में सत्ता का यथार्थ रूप और कलाकार की दशा का चित्रण पात्र बखूबी करते हैं। रंगनाथ (संगीत मंडली में तबला बजाते हुए) और सुरेखा (नटी क्री भूमिका में नाचते हुए) सत्ता का नग्न रूप कुछ इस तरह प्रकट करते हैं—

संगीत मंडली : नंगा नाचै, चोर बलैया लेय,
भैया नंगा नाचै।
नटी : थोथा मोटी खाल मढ़े दमदार दमामे
कूट रहा है दोनों हाथों मुसल थामें
झूठ प्रचारक अखबारों की कछनी काछै। (पृ० 43)

रंगनाथ और सुरेखा को व्यवस्था द्वारा संचालित कठपुतलियाँ घेर लेती हैं। अंधकार के मौजूदा दौर में मंच पर कठपुतलियों का साम्राज्य होने पर रंगनाथ चिंतित है और जानता

है कि 'मंच अंधेरे में' है। इस अंधेरे को सत्ता के कारकुनों ने और भी सघन बना दिया है। नाटककार ने आजादी और लोकतंत्र की तरक्की पर यहाँ तीखा व्यंग्य किया है।

नाटक में सुरेखा सत्ता के लोगों से इस कदर घिर जाने पर, कोड़े खाने पर, अनेक यातनाएँ सहने पर भी मंच की रक्षा करती है। सुरेखा का यह संघर्ष यहाँ केवल उस का संघर्ष न रह कर उन सभी कलाकारों का संघर्ष बन जाता है जो मरना तो कबूल करते हैं पर समझौता किसी भी सूरत में नहीं करते। पुलिस प्रशासन की गलत नीतियों के सामने न झुकने का जज्बा ही उसे ऐसा ज़ख्म देता है जो उसकी यादों के कोनों में बुझता नहीं लगातार रिसता ही रहता है। इतिहास और स्मृति के मेल की अद्‌भुत क्षमता द्‌वारा यहाँ नाटककार उन वारदातों पर गहरा व्यंग्य कर जाते हैं जो भयंकर रूप में तीव्रतर हो उभरती रही हैं और ऐसे हादसों को जन्म देती रही हैं। सुरेखा उस व्यवस्था की शिकार होती है जहाँ रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं और अन्ततः वह अपने सम्मान को खो कोमा में चली जाती है। एक लम्बे समय अन्तराल के बाद अंक दो के दृश्य एक में वह इलाज के दौरान स्टेज पर पहुँचकर ही अपनी पहचान और अपना वजूद पुनः पाती है। भयावह स्थितियों से गुजरते हुए भी वह पात्रों और मुखौटों से बाहर आती हुई, भय के ताने-बाने को तोड़ती हुई, व्यवस्था के हाथों की कठपुतली बनने के अभिशाप से मुक्त हो जाती है। इसी आत्मविश्वास से भर कर वह डर से मुक्त हो नंदिता को रंगमंच पर छा जाने के लिए कहती है। सुरेखा ढहती हुई भी अपना मस्तक झुकने नहीं देती और कहती है 'Where the mind is led forward.... Into that of freedom....'

रंगनाथ और सुरेखा के इस विद्रोह को नंदिता आगे बढ़ाती है। रंगनाथ की छड़ी नंदिता की छड़ी में रूपांतरित होती है जिसके द्‌वारा वह अपने बापू के संघर्षों को नई पीढ़ी तक ले आती है। नाटक काल खण्ड को चीरता हुआ (नंदिता के रूप में) अमरजैंसी के दौर से सीधे आज के दौर की विसंगतियों में प्रवेश करता है, जहाँ नंदिता को मार-मार कर स्टेज से खदेड़ दिया जाता है। इसके विरोध में वह मौन जुलूस निकालती है। रंगनाथ का स्वप्न सुरेखा से होता हुआ नंदिता के दृढ़ निश्चय में परिणत होता है और तब नंदिता, नृत्य और छड़ी एकाकार हो जाते हैं और एक प्रकाश पुंज उभरता है जो 'शो मस्ट गो ऑन' की ध्वनि को साकार करता है।

नरेन्द्र मोहन के नाटकों का अपना अलग ही शिल्प धरातल है। 'मंच अंधेरे में' नाटक में भी इसी नवीन शिल्प का परिचय मिलता है। प्रयोग-धर्मी नाटककार होने के पूरे अर्थ को यह नाटक कई दृष्टियों और धरातलों पर चरितार्थ करता है। अंधकार और प्रकाश के मिले-जुले रूप, अंधकार के कई शेड्स और व्यंजनाएँ यहाँ प्रस्तुत हुई हैं। मंच पर व्याप्त अंधेरे को दर्शकों तक सम्प्रेषित करने के लिए नाटककार ने अनेक रंग उपकरणों को माध्यम बनाया है जैसे कठपुलियाँ जिनके चेहरे कठपुतलियों के हैं और धड़ मनुष्यों के। मुखौटे जो निर्जीव होते हुए भी सजीव हो उठते हैं। ये मुखौटे आरम्भ से अंत तक सभी घटनाओं के साक्षी हैं।

कर्टन का प्रतीकात्मक प्रयोग भी आकर्षक है। ये सभी रंग उपकरण अनेक प्रकार की ध्वनियाँ-अन्तर्ध्वनियाँ प्रकट करते हुए नाटकीय संवेदना को बहुत सूक्ष्मता से प्रकट करते हैं। ये सभी रंग उपकरण नाटक की मूल संवेदना को न केवल तीव्रता प्रदान करते हैं बल्कि विद्रोह की रंगमंचीय बुनावट भी इन्हीं के द्वारा साकार हो पाई है।

रंगनाथ की छड़ी 'अलातचक्र' जिसका प्रयोग वह मंच पर अकेले करता है दृश्य दो में वही उसके रंग संघर्षों को आगे ले जाने वाली है। उसके दोनों ओर लट्टू चमकते दिखते हैं। इन सभी रंग उपकरणों ने एक फैंटेसी को जन्म दिया है। यह फैंटेसी दर्शकों को रंगमंच के आन्तरिक स्त्रोतों से जोड़ देती है। ये सभी रंग उपकरण केवल उपकरण न रहकर एक प्रतीकात्मक सत्ता में बदल जाते हैं और नाटकीय द्वन्द्व को सघन करते जाते हैं। यहाँ रंगमंच के ही उपकरणों द्वारा बहुत कुछ कह जाने की कला अनूठी है। मंच पर व्याप्त अंधेरे की व्यंजनाएँ उद्घाटित करने में इस कला का अपूर्व योगदान है। इस से नाटक की रंग-भाषा भी गहरे रूप में प्रभावित हुई है। रंग-भाषा को नाटकीयता प्रदान करने में नाटकीय शब्द नाटककार की सबसे बड़ी शक्ति बन कर उभरा है। संगीत-मंडली के साथ-साथ, अंधकार-प्रकाश का संयोजन जिस ढंग से नाटक में किया गया है, वह इसे ब्रेख्तीयन शैली के निकट ले जाता है। संगीत मंडली, मुखौटे, कठपुतलियाँ, अलातचक्र का प्रयोग इस नाटक को लोकनाट्य शैली के करीब ले आया है।

'मंच अंधेर में' रंग मंच के नए मुहावरे को गढ़ता है। मंच और अंधेरा व्यापक व्यंजनाएँ समेटे हुए आज के संदर्भों में जीवंत हो उठे हैं। व्यवस्था द्वारा बनाए गए सन्नाटे को नरेन्द्र मोहन ने रंग शब्द की शक्ति द्वारा तोड़ने का सफल प्रयास किया है। कलाकार के अस्तित्व के संकट को, उसके निजी विवेक को, विचार चिंतन को, रचना कर्म और सृजन स्वतंत्रता को, अधिकारों को—सभी पक्षों को यह नाटक अनूठी कला में प्रकट करता है। नाटक के अंत में मौन जुलूस और सुरेखा का ढहना परिवर्तन की दिशा का सूचक है।

ooo

हिन्दी ग़ज़ल और दुष्यन्त कुमार

❑ डॉ. मज़हर अहमद खान

हिन्दी गज़ल के प्रणेता दुष्यन्त कुमार त्यागी का जन्म 1 सितम्बर, 1933 को गाँव-राजपुरा-नवादा, ज़िला बिजनौर, उत्तर प्रदेश में हुआ तथा निधन अल्पआयु में 30 दिसम्बर, 1975 को भोपाल में हुआ। उनकी पत्नी का नाम राजेश्वर त्यागी था। उनकी दो संतानें रहीं-अर्चना और आलोक। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं-कविता, उपन्यास, नाटक, आलोचना के अतिरिक्त बालोपयोगी साहित्य को भी साहित्य-सृजन का माध्यम बनाया, लेकिन ख्याति उन्हें एक हिन्दी गज़लकार के रूप में प्राप्त हुई। उनके ग़ज़ल कहने का उद्देश्य अपने चारों ओर बुनी जा रही कविता की एकरसता को तोड़ने के लिए तथा प्रेरणा शमशेर बहादुर सिंह से प्राप्त की।

यद्यपि हिन्दी में ग़ज़ल लिखने की स्वतंत्र परम्परा देखने को नहीं मिलती फिर भी अमीर खुसरो देहलवी (सन् 1253-1325) को खड़ीबोली हिन्दी का प्रथम गज़लकार होने का श्रेय प्राप्त है।[1] तत्पश्चात् खड़ीबोली हिन्दी में गज़ल कहने वालों में मुहम्मद कुली कुतुबशाह, दक्खिनी हिन्दी के गज़लकार गंवासी, हाश्मी, वली आदि के नाम लिए जा सकते हैं। आधुनिक काल में ग़ज़ल की लोकप्रियता को देख अनेक कवियों ने हिन्दी में ग़ज़लें कहना प्रारम्भ किया। जिनमें कुछ प्रसिद्ध नाम हैं-रामदरश मिश्र, गोपालदास 'नीरज', उदय भानु 'हंस', बालस्वरूप 'राही', शेरजंग 'बेचैन' आदि। लेकिन इस विधा में जो सफलता दुष्यन्त कुमार को प्राप्त हुई वह अन्य किसी हिन्दी गज़लकार में देखने को नहीं मिलती। यद्यपि प्रताप नारायण मिश्र, अयोध्या सिंह उपाध्याय, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', रामनरेश त्रिपाठी आदि जैसे वरिष्ठ कवियों ने भी ग़ज़लें लिखीं थीं। आज अंग्रेज़ी में भी गज़लें लिखी जा रही हैं। इंग्लैंड के कई कवि-ब्रियान हैनरी, डेनियल हाल और शेरोन वियोन अंग्रज़ी में गज़लें लिख रहे हैं। उर्दू की पत्रिका 'शाइर' (मुम्बई) में इनकी गज़लें छपी हैं। हिन्दी-उर्दू के शब्दों का संतुलित और

---

1. *सखी पिया को जो मैं न देखूं, तो कैसे काटूँ अंधेरी रतियाँ।*
किसे पड़ी है कि जो सुनावे, पियारे पी को हमारी बतियाँ।
न नींद नयना, न अंग चैना, न आप आवैं, न भेजे पतियाँ।
मैं प्रीत मनके, दुराए राखूँ, जो जाए पाऊं पिया की खतियाँ।

- (अमीर खुसरो)

---

* *मोहल्ला, साज़गरीपोरा (हवल) श्रीनगर-190011 (कश्मीर)*

यथौचित्य प्रयोग करने की क्षमता दुष्यन्त कुमार को प्राप्त थी। इस संदर्भ में कमलेश्वर का मत है, ''दुष्यन्त कुमार से पहलें ग़ज़ल लगभग डेढ़ हज़ार वर्षों से फ़ारसी में, फिर उर्दू में भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित रही है लेकिन उर्दू ग़ज़ल जहाँ मध्यकाल से अभी तक सिर्फ अदब-अदीब और बुद्धिजीवियों तक सीमित थी, दुष्यन्त कुमार ने इसे आम-आदमी की रोज़मर्रा की पीड़ा तक पहुँचाया। शब्दों का व्यवहार-सम्मत सृजन-संसार दिया जो सबकी समझ में आ जाता है। क्योंकि वह उर्दू गज़ल और उसकी परम्परा से भी भली-भांति परिचित थे। इसीलिए वे अपनी बात पूरी शक्ति से हिन्दी ग़ज़ल में कह सके, उसे संवार सकें और हिन्दी भाषा के शब्दों को उद्वेलित करके उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल का यह नया रूप प्रस्तुत किया।''[1] ग़ज़ल लेखन के विषय में दुष्यन्त कुमार ने स्पष्ट कहा है-''यह ग़ज़ल बहुत ही नाज़ुक डिक्शन (शैली) है और इन ग़ज़लों में मैं जैसा कुछ लिख रहा हूँ, वैसी कभी किसी ने कल्पना तक न की थी। उर्दू वालों को तो हैरत है कि ग़ज़ल भी इतनी, तेज़-तर्रार हो सकती है।''[2] गज़ल के कथ्य, शिल्प और छन्द विधान को दृष्टि में रखते हुए ही कमलेश्वर ने कहा था-''गज़ल में जो छन्द प्रयोग होता है वह मूल रूप से फ़ारसी काव्य-सौंदर्य से उद्भूत है परन्तु आज की हिन्दी गज़ल ने खड़ीबोली की ध्वनि और रस को छन्दों में जिस खूबसूरती से आत्मसात किया है उससे निश्चित रूप से गज़ल विधा समृद्ध हुई है।''[3] निःसंदेह दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल लेखन में जिस भाषा का प्रयोग किया वह आम लोगों की भाषा बन कर सामने आई। इस विषय में वह कहते हैं-''शुरू-शुरू में मुझे सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। मेरी दिक्कत यह थी कि उर्दू में जानता नहीं और हिन्दी में मुझे वह चुहल, वह मुहावरा और बोलचाल का वह बहाव नहीं मिला, जिसके सहारे ग़ज़ल की जाती है या जो ज़्यादातर लोगों की ज़बान पर चढ़ा है। मगर यही अज्ञानता मेरे लिए एक शक्ति बन गई क्योंकि मुझे लगा कि आम आदमी एक मिली-जुली ज़ुबान बोलता है। वह न शुद्ध उर्दू होती है न शुद्ध हिन्दी। इसलिए मैंने उस भाषा की तलाश की जो हिन्दी को हिन्दी और उर्दू को उर्दू दिखाई दे और आम आदमी उसे अपनी ज़बान समझ कर अपना सके।''[4] इस जन-साधारण की भाषा में ही उन्होंने अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक वेदना, पीड़ा, नैराश्य को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त की।

प्रारम्भ में दुष्यन्त कुमार ने 'परदेसी' उपनाम से काव्य-रचना की। सन् 1957 में उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'सूर्य का स्वागत' प्रकाशित हुआ। इसके द्वारा उन्होंने अपनी अलग पहचान बनाई जोकि कम ही देखने को मिलती है। इसमें कवि के वैयक्तिक आन्तरिक द्वन्द्व की झलक स्पष्ट झलकती है-

---

1. *ग़ज़ल ..... दुष्यन्त कुमार के बाद (फ्लेप पर) - सं. दीक्षित दनकौरी*
   प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. *सारिका (पत्रिका) - अंक : मई 1976, पृष्ठ: 63*
3. *ग़ज़ल.....दुष्यन्त कुमार के बाद (फ्लेप पर) - सं. दीक्षित दनकौरी*
4. *सारिका (पत्रिका) - अंक : मई 1976, पृष्ठ : 37*

आँगन में कोई है
दीवारें चिकनी हैं, काली हैं,
धूप से चढ़ा नहीं जाता है,
ओ भाई सूरज! मैं क्या करूँ ?
मेरा नसीब ही ऐसा है।
खुली हुई खिड़की देख कर
तुम तो चले आए,
पर मैं अंधेरे का आदी
अकर्मण्य.....निराश.....
तुम्हारे आने का खो चुका था विश्वास!

-(सूर्य का स्वागत)

'आवाज़ों के घेरे' कविता-संग्रह (सन् 1963) में कवि ने जहाँ पीड़ित, शोषित, घायल लोगों के सुरों को उभारा वहीं अपने जीवन की तिक्तता को अभिव्यक्त किया। अपने जीवन की आस्था का रूप वैचारिक भूमिका पर निर्धारित कर वह अपने और तपती धरती के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहते हैं-

मैं तो बस जल भीगा कपड़ा हूँ
जिसको निचोड़ कर मेरी ये कविताएं
उष्ण इस धरती के ऊपर छिड़क देती हैं.....
कविताएं माध्यम हैं शायद.....

इसी प्रकार की भावना तथा उनकी मन: स्थिति को उनके काव्य-संग्रह 'जलते हुए वन का बसंत' में देखी जा सकती है-

तुम्हारे साथ
देखते-देखते
समुद्र का पुल बन गया है,
ऊँचे गिरि शिखरों तक सड़क
जन-संकुल नगरों से दूर निकल गया हूँ
हाथों में थामे हाथ!

देश-विदेश में प्रसिद्ध उनका ग़ज़ल-संग्रह 'साए में धूप' (सन् 1975) में उन्होंने ग़ज़ल की सभी विशेषताओं-कथ्य, शिल्प आदि को हिन्दी में अपनाते हुए जीवन की सकल अनुभूतियों, आयामों और बिम्बों को अभिव्यक्त किया है।

उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को यथार्थवादी और जनोन्मुखी बनाया। उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों, ज्वलन्त समस्याओं तथा जन-चेतना को प्रभावशाली ढंग से मुखरित किया। प्रेम-सौंदर्य पर आधारित ग़ज़लों की परम्परा से हट कर उनकी ग़ज़लें एक नया तेवर लेकर आईं, जिनमें आक्रोश, व्यंग्य और जन-साधारण पीड़ा, विपण्णता ने अभिव्यक्ति पाई। ऐसा भी नहीं है कि उन्होंने रोमानी ग़ज़लें नहीं कही हैं। उन्होंने शृंगारिक ग़ज़ल को विविधता, व्यापकता और संजीदगी प्रदान कर व्यक्ति और समाज के लिए उपयोगी बनाया। अमीर खुसरो की रोमानी रचनाओं की भांति युवा कवि दुष्यन्त कुमार की रोमानी आस्था इनकी प्रारम्भिक कविताओं में देखी जा सकती है-

फिर मेरा ज़िक्र आ गया होगा
वो बरफ़-सी पिघल रही होगी

तथा-

वो घर में मेज़ पर कुहनी टिकाये बैठी है,
थमी हुई है वहीं उम्र आजकल लोगो।

उनकी ग़ज़लें भोगे हुए यथार्थ और आम आदमी की भूख, अभाव, कष्ट को व्यक्त करती हैं, सामाजिक व्यवस्था पर चोट करती हैं-

कहाँ तो तय था चिराग़ां हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर इंगित करते हुए वह कहते हैं-

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियां,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।

वह इस सामाजिक व्यवस्था को बदलने के पक्षधर भी हैं-

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कमल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।

समाज के ठेकेदारों, अफ़सरशाही से त्रस्त लोगों की वाणी बन वे कहते हैं-

यहाँ दरख़्तों के साए में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।

तथा—

दस्तकों का अब किवाड़ों पर असर होगा ज़रूर,
हर हथेली खून से तर और ज़्यादा बेकरार।

सामाजिक प्रताड़नाएं सहते शोषित लोगों की टीस तथा उनमें एक नई आशा उत्पन्न होने तथा नई क्रान्ति की उम्मीद के साथ वह कहते हैं-

जो बज़्म में आए थे पर बोल नहीं पाए,
उन लोगों के हाथों में अब मेरी ग़ज़ल होगी।

तथा—

वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेकरार हूँ आवाज़ में असर के लिए।

राजनैतिक, सामाजिक विद्रूपताओं के विरुद्ध सिंहनाद करने वाले संवेदना सम्पन्न दुष्यन्त कुमार यह भली-भाँति जानते हैं कि संघर्ष किए बिना व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता-

कैसे आकाश में सूराख़ नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

इस प्रकार अन्याय का विरोध करती उनकी गज़लें हमारे समसामयिक इतिहास का जीवन्त दस्तावेज़ सिद्ध होती हैं।

दुष्यन्त कुमार की प्रसिद्धि का एक और कारण उनका पौराणिक कथानक पर आधारित काव्य-नाटक 'एक कंठ विषपायी' भी है। जोकि जर्जर रूढ़ियों और परम्पराओं के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नए मूल्यों को संकेतित करने वाला एक समर्थ काव्य-नाटक है।

काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त 'मन के कोण' (एकांकी), 'मसीहा मर गया' (नाटक) तथा 'छोटे-छोटे सवाल', 'आंगन में एक वृक्ष' और 'दुहरी ज़िंदगी' (उपन्यास) उनकी अन्य रचनाएं हैं।

ooo

समीक्षा

शहर-ए-ग़ज़ल : 'सारे रंग उसी के हैं'

❑ डा० आदर्श

पुस्तक का नाम	:	*शहर-ए-ग़ज़ल*
लेखक	:	*प्रितपाल सिंह बेताब*
प्रकाशन	:	*निर्मल प्रिंटर्ज, शाप नं. 10-11, जे.डी.ए. कॉम्पलैक्स, सुभाष नगर, तोप शेरखानियां, जम्मू।*
पृष्ठ	:	*167*
मूल्य	:	*रु. 300/-*

बार-बार उर्दू को मुसलमानों की भाषा कह कर लोगों के मन में द्वेष और दुराग्रह की जो गहरी परत जमाई गई थी, वह अब धीरे-धीरे उतर रही है। फलस्वरूप उर्दू और हिन्दी जैसी समृद्ध भाषाओं के पाठकों में दोनों के साहित्य में परस्पर रुचि बढ़ी है, जो एक अच्छा शगुन है।

आज़ादी के बाद जब हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा बनने का सम्मान मिला तो जिन की मातृभाषा उर्दू थी वे भी धीरे-धीरे हिन्दी लिखने, पढ़ने और समझने लगे। नई पीढ़ी में तो शायद ही उर्दू का साहित्यकार या पाठक ऐसा हो जिसे हिन्दी से किसी प्रकार का वैमनस्य हो। इस प्रकार हिन्दी का सारा साहित्य, अतीत से वर्तमान तक, उसकी नज़र में है, परन्तु हिन्दी भाषी पाठकों की स्थिति बिल्कुल ही विपरीत है। जब तक उन्हें देवनागरी में लिप्यंतरित या अनूदित उर्दू की रचनाएं नहीं मिलती वे उनसे अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसे हालत में 'कैक्टस और गुलाब' के बाद प्रितपाल सिंह बेताब का 'शहर-ए-ग़ज़ल' दूसरा सार्थक प्रायस है। हिन्दी पाठकों तक खुद को पहुंचाने का, जिसकी सराहना की ही जानी चाहिए।

'शहर-ए-ग़ज़ल' को बांचते शायर के सारे-के-सारे रंग सामने आते चले गए। लगा कि बेताब 'वाह-वाह' वाला शायर नहीं है, यह पाठक को अपनी सोच और गहराई में उतार ले जाने वाला शायर है। बेताब की इस यात्रा में पारम्परिक इश्क, विरह, दर्द, नकली जोश, नारी सौन्दर्य, मुहब्बत की दहक, माशूक के लिए मर-मिटने की बेताबी, और शाब्दिक वाग्जाल एक सिरे से नदारद है। फिर इस शायर का सफर क्या है, कैसा है? तो जनाब, यह सफर निराशा से चलता-चलता, आशा कि ओर बढ़ता सफर है जिस सफर में शायर अपने भीतर की खुत-खुती से परेशान है। अन्दर बराबर एक असन्तोष का चूल्हा जले जा रहा है, भीतर

** 25, एम. आई. डी, डॉ० कालोनी/उधमपुर (ज.क) मो. 9419270049*

अधूरापन है, वीरानी है, ख़ला है, भटकाव है, तलाश है, दौड़ है, दर-ब-दरी है, अपने को पहचानने की कोशिश है।

दुनिया की असलियत जान ली है, लेकिन दुनिया की शर्तों पर जीने की मजबूरी है। ऊपर वाले पर अटूट विश्वास है, इसी लिए निराशा से आशा तक की यात्रा सम्भव हो सकी है।

इस सफर में तन्हाई का 'अहसास' है, क्योंकि शायर अपनी बात महसूस तो शिद्दत से करता है, लेकिन साथ किसी को ले नहीं पाता। दुनिया उसे नश्वर लगती है और इस राज में उसे यह आहट बराबर होती है कि कहीं कुछ अचानक घटेगा जरूर संक्षेप में यदि कहा जाए तो बेताब का यह सारा सफर आध्यात्म का सफर है- 'माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं/तू मेरा शोक देख, मेरा इन्तज़ार देख (इक़बाल)।

जो डगर बेताब ने चुनी है वह सामान्य डगर नहीं है। अत: निराशा के पंख हाथ लगे तो आश्चर्य क्या-'भटक जाना ही अच्छा इस डगर में/मिला भी क्या हमें आखिर सफर में।' उपलब्धि अपनी बखान करते हैं-'गई सदियों का हासिल पूछते हो/शिखर तक आए हम चल कर सिफर से। थकान का आलम यह की-'अब तो साहिल, की तमन्ना ही नहीं है गोया/ ' एक मंझधार है और एक भंवर है अपना।' यह भी कि-'कश्ती भी शिकस्ता है ये तूफान भी पैहम है/ साहिल के नज़र आने की उम्मीद भी कम है। कुछ कर न पाने पर पाया कि- लफ्ज क्या-क्या जुबान ही में रहे/तीर क्या-क्या कमान ही में रहे।' अन्त तक आते-आते महसूस हुआ कि अंधे मोड़ तक आन पहुंचे हैं- 'पहुँचा दिया है उसने हमें अंधे मोड़ तक। बेताब, उसके बाद वो रस्ता नहीं रहा। थकान का आलम इतना तारी है कि-'मस्त-ए-सफर का आगे कोई सिलसिला नहीं। पगडंडियाँ हज़ार हैं, एक रास्ता नहीं। चुपचाप ज़िन्दगी के सवालों से भाग जाएं। अब क्या करें कि ओर कोई रास्ता नहीं।'

अब यहां से सफर आगे बढ़ता है-'कोई उम्मीद फिर जगाऊं कहीं। इक दीया गार में जलाऊँ कहीं/है जो दरिया रुका हुआ अन्दर/सोचता हूँ उसे बहाऊँ कहीं। धीरे-धीरे आशा का संचार भीतर-ही-भीतर होता है कुछ-न-कुछ सूरत-ए-हालात बदल जाएगी। धूप निकलेगी तो ये बर्फ पिघल जाएगी/आएंगे 'बेताब मौसम', फिर चिनारों पर नए/लाएंगे रंगों की एक ताज़ा कहानी देखना।

बेताब में जीवट है। उसे पता है कि सफर में उतार-चढ़ाव, सर्द-गर्म, ऊँच-नीच, दिन और रात तो चलते रहेंगे ही-'गिरते हो फिर उठ जाते हो, चल देते हो फिर आगे/'बेताब' ये जीने की ललक फितरत-ए-आदम है।' बेताब जीना चाहता है लेकिन अपनी तरह से अपनी शर्तों पर। पर कभी-कभी कुछ देर तक उसे संसार की शर्तों पर शुरू-शुरू में भी जीना पड़ा, भले ही कितना वह जीना, जीना न रहा हो-

'आखिरश उस बेजिहत दरिया में बह जाना पड़ा। हार कर सोने की जंज़ीरों को अपनाना

पड़ा/इक घने जंगल की जानिब दौड़ते जाते थे लोग/एक दिन उस भीड़ में हम को भी खो जाना पड़ा।'

लेकिन असलियत से वाफिफ है बेताब-'साहिलों पर बेबसी के खोल हैं बेताब हम/ दूर दरियाओं की तुगियानी में खुद वह जाएंगे।'

जंज़ीरों से घिर कर, बंध कर, सुख भोगते भी, उड़ान की चाहना है भीतर-ही-भीतर- 'हवा हूँ मैं,' कहाँ घर बार मेरा/ये क्या दीवारो-ओ-दर से घिर गया हूँ।

बेताब की सारी यात्रा में जो सर्वप्रमुख भाव है वह है अपने अन्दर का सफर। बाहर का खोखलापन बढ़ता है-'ये जो गुंजान शहर है बेताब/अन्दर-अन्दर सभी वीराने हैं।' बाहर का सब नकली शोर है, अन्दर के वीराने को आबाद करना जीवन का मकसद होना चाहिए। 'किसी मलबे से पुर नहीं होता। मेरे अन्दर-जो खला रहता है।' जैसे मैंने पहले कहा बेताब के अन्दर-खुत-खुती है, जो सवाल बन उभरती है-

'मुझ को बाहर' धकेलने वालो/ मेरे अन्दर ये बेकली क्या है?
चल रहा है तमाम कारोबार/ मेरे दिल में ये बेदिली क्या है ?'
महसूस बराबर करे जा रहा हूँ बेताब कि—
'बाहर वही पुरवाई/वही सब्ज मनाजिर है
अन्दर वही सहरा/वही तपता हुआ मौसम है।'
न घर में चैन था, न बाहर, मन किसी तलाश में भटका किए था।
'क्या करें और कोई राह न थी
उम्र भर इस जहान ही में रहें।
दर-ब-दर उन दिनों भी थे लोग
हम जब अपने मकान ही में रहे।'

बेताब को पता है अपने बिछुड़ने का, पर मिलन का तरीका वह पूछता फिर रहा है-

'मुझे मुझ से मिला दे कोई बेताब
मैं अपने आप से बिछड़ा हुआ हूँ।'

फिर पाया बेताब ने अपने ही सामने कि—

'लम्हा-लम्हा खुल के फिर पैकर खुला/कितनी मुश्किल से मगर-पत्थर खुला।
पांव मेरे रास्ता खुद हो गए/हर कदम फिर इक नया मंजर खुला
सारे दरवाज़े खुले बाहर की ओर/एक दरवाजा मगर अन्दर खुला।'

सारी बेताबी लड़ाई अपने से है-

'खुद' से ही दौड़ लगी रहती है
बस कि इक दर-ब-दरी रहती है।

उसे लगता है-

'बन में रस्ता भूल गया

दूर देस का राजा हूँ।'
लेकिन सफर जारी है ओ तलाश भी-
रास्तों-रास्तों भटकता हूँ
जाने किस की तलाश करता हूँ।

लेकिन बेताब के साथ अटूट ईश्वर विश्वास भी है जो उसकी इस निराशा, आशा, बेचैनी, भटकाव के बाद की उपलब्धि भी है। उसका 'मैं' धीरे-धीरे उस सत्ता के समक्ष तिरोहित हो गया है-

'तुम किसी नाम से पुकारो हमें
हम तो पहचान खो चुके हैं मियाँ।'

तब वह पाता है-

'मोती क्या-क्या बिखरे हैं
ध्यान के सागर गहरे हैं।
उस का कोई रंग नहीं
सारे रंग उसी के हैं।'

उसको सामने महसूस करते ही कोई पर्दा न रहा-

खुदा से छुपा सके ना खुदा से हम अपने जुर्म
पर्दे हजार करके भी पर्दा नहीं हुआ।'

जिसे 'उसका' पता चल जाए तो उस बड़े हाकिम के सामने छोटे हाकिम को कौन माने-

'रहे हम से खफा-खफा हाकिम
हम रहे अपनी हुकमरानी में।'

बेताब की तृप्ति का भाव यहां अन्त में आते-आते प्रकट होता है-

'ऐसा दरिया है वो होता हूँ मैं जब उसके करीब
बिन पिये ही वो मेरी प्यास बुझा देता है।'

बेताब अपनी आस्थाओं और जीवट की यात्रा के बल पर एक ऊँची उड़ान का शायर भी है। वह सांसारिक बंधनों में रहते ही उसे सोने को जंज़ीरें समझता है। सारी ऐशो इशरत, वह छक कर भोग चुका है, इसकी हकीकत समझ चुका है। जैन साहित्य में 31 उन सम्राटों का वर्णन है जिन्होंने तमाम सुख-वैभव भोग सन्यास लिया। तृप्ति के बाद भी प्यास बनी रहे तो इसका सीधा अर्थ है कि यात्रा गलत है। तृप्ति सच्ची यह नहीं कहीं और है-

'ए-कुंज-ए कफस है मिरी परवाज कहीं दूर,
है रक्स मिरा पौद की जंज़ीर से आगे।'

यह भी कि-

'सोचता हूँ कि हवा हो जाऊँ
कैद से आज रिहा हो जाऊं।'

बेताब तभी तो फर्माते हैं-

'गुजर के जिन से हैं पाई बुलन्दियां हमने
रखी है याद में ज़िन्दा वो पस्तियाँ हमने
गुलाम होते अगर ख़्वाहिशों के अच्छा था
पकड़ के छोड़ी हैं सौ बार-तितलियाँ हमने।'

यही सफर की उपलब्धि है-

'सड़क पे चलते हुए अकसर ऐसा लगता है,
कहीं से कोई परिन्दा पुकारता है मुझे।'

बेताब की शायरी पर इतना कहते-सुनते बराबर लगे जा रहा है कि बेताब की शायरी की आत्मा को शायद व्यक्त कर भी पाया हूँ कि नहीं। शब्दों की भी एक सीमा होती है। अपने भावों को बेताब ने भी शब्दों के सहारे ही व्यक्त किया है। यहां विख्यात कवि, आलोचक और शब्द शिल्पी अशोक वाजपाई का कथन याद आ रहा है-

'मैंने हमेशा शब्दों को उत्साह, ललक और कृतज्ञता से उठाया और उनसे अपनी कविता विन्यस्त की है। इसका गम कभी नहीं हुआ कि सच मेरे हिस्से नहीं आया या उसके लिए दौड़ में आगे-आगे नहीं जा पाया। चिंता इसकी ज़रूर रही कि शब्दों के मामले में पिछड़ न जाऊँ। उन्होंने हमेशा साथ दिया और कई बार गिरने से भी बचाया।'

बेताब जैसे बड़े शायर को पढ़ते भी बराबर यही लगता-महसूस होता रहा।

पठानकोट के विख़्यात शायर परवीन कुमार अश्क कहते हैं-

'जब में जंगल हो जाता हूँ
मोर नाचने आ जाता है।'

बेताब की सारी यात्रा जंगल हो जाने की यात्रा है।

अनन्त सत्ता के लिए यदि हमने झांड़-झंखाड़ हटा लिए तो शेष जो बचेगा वह शब्दातीत है, वही मोर है। बेताब के शब्दों में-

'बन्दगी में रहूँ चाहूँ जब तक
और जब चाहूं खुदा हो जाऊँ।'

ooo

ओह् बी दिन हे : एक पाठकीय प्रतिक्रिया

❑ कृष्णा सोबती

एक शाम साहित्यिक मित्र-मंडली में अन्तर-भारती की बात हो रही थी। क्या हिन्दी-उर्दू की एक ही लिपि हो सकती है। क्या भारतीय भाषाओं को रोमन लिपि अपनानी चाहिए। भाषा के लिए लिपि का परिवर्तन एक गम्भीर मसला है।

भाषा-लिपि-वाचन-संस्कृति एवं संस्कार एक-दूसरे से गहरे तक गुँथे हैं। यह मात्र क्षेत्रीयता और जाति, धर्म और साम्प्रदायिकता का ही प्रश्न नहीं। भारतीय जन-जीवन विभिन्नताओं के बावजूद बँधा है। इसके चलते भी लिपि-परिवर्तन का पक्ष भाषायी सीमाओं के बाहर खड़ा रह जाता है। हमें यह मान लेना चाहिए कि भाषायी अस्मिता गहरे तक अपनी-अपनी लिपि से जुड़ी है। एक-दूसरे के करीब होते हुए भी अपनी-अपनी लिपि की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध है। मराठी, राजस्थानी जैसी भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाती हैं। इसी तरह डोगरी भी। डोगरी और पहाड़ी की समानता और विभिन्नता एक लिपि के होते भी अपने-अपने ध्वनि संसार में एक-दूसरे के समान हैं और अलग भी। अपनी-अपनी भौगोलिक अभिव्यक्ति की गरिमा के सन्दर्भ में।

डोगरी के आलोचक शिवनाथ जी की आत्मकथा 'ओह बी दिन हे' प्रकाशित हुई तो उसको पढ़ने में मुझे न दिक्कत हुई और न समझने में।

''मेरे चेतें च बस्से दा जम्मू, जम्मू नेईं रेआ, जित्थें मेरे जीवन दे पैह्ले बाई ब'रे बीते। झांकियां, किश आपबीतियां किश उस बीते समें दे हालात, हलचलें ते घटनाएँ दियां किश उस्तादें, मित्तरे ते कताबें दियां जिन्हें मिगी प्रभावत कीता।

अपने ते दुएं दे बारे च बी लिखना मुश्किल होन्दा ऐ। समें दे प्रवाह च मनुक्ख, हालात, परिदृश्य बदली जंदे न। अऊं अज्ज ओह नेईं, जो 1950 च जां उस कोला पहले हा। उस समय दा जम्मू जम्मू नेईं रेहा, लहौर लहौर नेईं, दिल्ली दिल्ली नेईं रेही। उस बीते दे समें गी किश चेतें दे सहारे ते किश डायरियें च कीते लीक-बलीके दी मददा क़न्ने इमानदारी ते सादगी ते सहज भाव कन्ने सजीव करने दा इक़ लौहका जनेहा प्रयास।''

'ओह बी दिन हे' पढ़ने लगी तो दशकों पहले पढ़े रेणु के 'मैला आंचल' की याद हो आई। पहली बार पढ़ा तो 'मैला आंचल' का भाषायी कौशल और कोलाहल कानों में देर

** 505 बी, पूवाशी, आनंदलोक मयूर विहार, दिल्ली 91*

तक गूँजता रहा था। दुबारा सस्वर पढ़े तो भोजपुरी की सरस ध्वनियाँ देर तक ज़हन में स्थित हो गईं।

दूसरी बार 'मैला आंचल' को सस्वर पढ़ा तो लगभग सभी कुछ दिल-दिमाग तक पहुँचा।

'ओह बी दिन हे' की शैली की संक्षिप्तता और बुनतर खादी की तरह ही खुरदरी और सादा है। ऐसा आत्मकथ्य किसी भी लेखक के हाथ में आत्मश्लाघा में परिवर्तित हो सकता था।

ऐसे पाठ की मर्यादा लेखक की आन्तरिक मनोवृत्ति से जुड़ी रहती है और वहीं से उसका विचार प्रस्फुटित होता है। वही अदृश्य संयम से लेखक की जीवनदृष्टि को रूपायित करता है। ऐसी रचना का रचाव शिल्प के दबाव को कथ्य पर हावी नहीं होने देता। प्रस्तुति में अतिरेक और अतिश्योक्ति गैरहाजिर हो तो जीवन्त आख्यान सीधा-सादा।

ड्योढ़ी के दूसरे कमरे में मेरा जन्म हुआ था। माताजी ने पंडित से मेरी जन्मपत्री बनवा अपने गहनेवाली सन्दूकची में लाल कपड़े में मौली से बाँधकर रखी थी।

"माता जी ने टिबड़े गी अपनी गहनें दी खान्नेदार लकड़ी दी सन्दूकची च सूहे कपड़े च इक लम्मी जेही खम्मनी कन्ने लपेटिये रक्खे दा हा। इसी ओह हर साल मेरे जन्मदिनै उप्पर द्रब्बू दे किश तृण रक्खिये इक गंड दिंदियां हियां। पंडत सदाइये पूजा करांदियां। पंडतजी गी दक्खना मठेआई बगैरा दिंदियां हियां। आंड-गुआंड दे निकड़े जागत-कुड़ियें च मठिआई बंडदियां हिंयां। मिगी चांदी दे कटोरे च मेवे भरी खीर खलांदियां हियां।"

पुत्र की जन्मपत्री और जन्मदिन की यह छवि हर माँ के हृदय में ऐसे ही अंकित-संचित रहती है। ऐसे ममतालू प्रसंग को जिस साधारण लय में प्रस्तुत किया गया है वह साधारण का ही विशेष है। इस तरह की सुथरी सादी ट्रांसपरेंसियों से ही यह जीवनी लिखी गई है।

घर में एक गाय है और पिंजरे में है मियाँ मिट्ठू। प्राइमरी में अव्वल आया देख माँ ने मिट्ठू को सिखा दिया-शिवे बच्चे उट्ठो-पढ़ो।

और एक दिन बादल तूफान में जाने कैसे पिंजरा खुला और बिल्ली मिट्ठू पर झपट्टा मार गई।

बच्चे ने इसका बहुत दुःख मनाया। बचपन से किशोर अवस्था में कदम रखा तो प्रोफेसरों के चहेते बन गए। उनकी बात सुनते और उस पर अमल करते।

प्रो. जैलाल की सलाह पर मैंने स्क्रैप बुक शुरू की। किताबों में जो कुछ भी अच्छा लगता उसमें लिख लेता।

जीवन एक है-सारे देस, सारे जीव-जन्तु एक-दूसरे से जुड़े हैं। युद्ध लड़ाई उस मानवीय एकता के खिलाफ है। सार्वभौमिक प्रेम की नीवों के ऊपर हमें एक भवन बनाना चाहिए। किशोर बड़ा हो रहा है। माता-पिता के सदाचारी नियम धर्म के होते भी वह धनी-निर्धन, जात-पात और हिन्दू-मुसलमान के बीच की दूरियों के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं रखता।

माता-पिता और अध्यापक प्रोफेसरों की छाँह में किशोर का जो चरित्र उभर रहा था, इन पत्रों से एक बात तो साफ उभरकर आती है कि इन दोनों का प्रभाव उसे अध्ययन के निरन्तर अभ्यास से ज्ञान संचित करने को प्रेरित करता रहा। छात्र के रूप में साधारण परिवेश के यथार्थ में अपने को स्थित किए रहना और आगे बढ़ने में आने वाली मजबूरियों को अबूर करते चले जाने का अनुशासन ही इस आत्मकथा का निचोड़ है।

आशा-निराशा, दुख-सुख को मनुष्य की नियति मान लेने वाले स्वभाव में ही कर्म करते चले जाने की वृत्ति ने लेखक के व्यक्तित्व को दिया एक ऐसा समन्वय जो गंतव्य की ओर बढ़ते चले जाने वाली चेतना के प्रति पाठक के मन में आदर का भाव जगाता है। इसीलिए कि लेखक उसे आत्मदया में संघर्ष का नाम नहीं देता। दरअसल यह जीवनी अपने अन्दर और बाहर से अपना रिश्ता समझने की स्वीकृति है। इस कथ्य में अपने जीवन के प्रति न विनम्र भाव है और न ही अपने को बढ़ा-चढ़ाकर कहने-सुनने की मुद्रा।

फीस, किताबों के लिए, ट्यूशनें, गवर्नमेंट कॉलिज लाहौर में दाखिला, जम्मू-कश्मीर इस्टेट हीरामंडी में रिहायश, सुबह-शाम अपना खाना पकाना, किताबें, लायब्रेरी और परीक्षा के अंकों पर नज़र रखना यह सब करते-धरते अपनी मेहनत से प्रशंसनीय सेवाओं में आना-जाना पाठ की पंक्तियों के पीछे से लेखक बिना कहे ही जैसे यह सिद्ध करना चाहता हो कि विधिमाता अपनी गुप्त लिपि में हर प्राणी को एक सिक्का पकड़ा देती है-उसे पढ़ते जाओ, कर्म कर मंजिल की ओर बढ़ते जाओ। इस जीवनी का सच भी यही है कि हर नश्वर जिन्दगी को जीकर ही इस लिखित को समझता-बूझता है कि यही मेरी नियति है और इसे ही मुझे अपनी कार्य-शक्ति के चलते स्वीकार करना है।

आत्मकथ्य जैसी कठिन विधा को रचनात्मक स्तर पर किसी एक शैली और शिल्प में बाँधना लगभग कठिन है। हर व्यक्ति एक-सा होता हुआ भी एक-दूसरे से अलग है। इसके आर-पार फैली पारिवारिक, सामाजिक स्थितियाँ इनके बीच की दूरियों और नजदीकियों की ओर संकेत करतीं हैं और किसी हद तक उन्हीं से भविष्य के संकेत भी लेती हैं। कभी साधन-सम्पन्नता, कभी परिश्रम और कभी मेधावी आकांक्षाओं और कभी नितान्त दुनियावी महत्त्वाकांक्षाओं का फलक देखती हैं।

'ओ बी दिन हे' में साधारण का असाधारण परिश्रम है और अपने को सँवारने-साधने की पूँजी का वैभव है। यही इस कृति को सहज, संयमित पाठ की अभिव्यक्ति को उजागर करती है।

आत्मकथा-आत्मकथ्य के रचनात्मक शिल्प और सहज सच्ची ईमानदारी पर बहुत कुछ लिखा गया है। उसे सुयोग्य आलोचकों के लिए छोड़कर एक पाठक होने के नाते हम इतना ही कह सकते हैं कि भाषायी आदान-प्रदान को नज़र में रखते हुए यदि नागरी लिपि में लिखी जाने वाली भाषाओं की कृतियाँ द्विभाषी रूप में प्रकाशित हों तो एक बड़ा पाठक संसार इससे लाभान्वित हो सकेगा।

ooo

Love

لبسر کشمیر ہزار داستان
پڑن ہیا وچہ — چھی ژلیہ گوم
میغہ ل
مہرم
ارگد استہ
شیتہ ہیو ہیو ہیو — پیران کشہ
ہبتی ہردمن
رکھ دو

Dec.-Jan. : 2010

Published by the Secretary on behalf of
J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu
and Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Pb.)